आचार्य कुन्दकुन्द-रचित

समयसार

(खण्ड-1)

(जीव-अजीव अधिकार)

(मूलपाठ-डॉ. ए. एन. उपाध्ये)

(व्याकरणिक विश्लेषण, अन्वय, व्याकरणात्मक अनुवाद)

संपादन

डॉ. कमलचन्द सोगाणी

अनुवादक

श्रीमती शकुन्तला जैन

प्रकाशक

अपभ्रंश साहित्य अकादमी

जैनविद्या संस्थान

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी

राजस्थान

आचार्य कुन्दकुन्द-रचित

समयसार

(खण्ड-1)

(जीव-अजीव अधिकार)

(मूलपाठ-डॉ. ए. एन. उपाध्ये)

(व्याकरणिक विश्लेषण, अन्वय, व्याकरणात्मक अनुवाद)

संपादन

डॉ. कमलचन्द सोगाणी

निदेशक

जैनविद्या संस्थान-अपभ्रंश साहित्य अकादमी

अनुवादक

श्रीमती शकुन्तला जैन

सहायक निदेशक

अपभ्रंश साहित्य अकादमी

प्रकाशक

अपभ्रंश साहित्य अकादमी

जैनविद्या संस्थान

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी

राजस्थान

- **प्रकाशक**
  अपभ्रंश साहित्य अकादमी
  जैनविद्या संस्थान
  दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी
  श्री महावीरजी - 322 220 (राजस्थान)
  दूरभाष - 07469-224323
- प्राप्ति-स्थान
  1. साहित्य विक्रय केन्द्र, श्री महावीरजी
  2. साहित्य विक्रय केन्द्र
  दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी
  सवाई रामसिंह रोड, जयपुर - 302 004
  दूरभाष - 0141-2385247
- प्रथम संस्करण : सितम्बर, 2015

- सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

- मूल्य -550 रुपये
- ISBN 978-81-926468-7-9
- पृष्ठ संयोजन
  फ्रैण्ड्स कम्प्यूटर्स
  जौहरी बाजार, जयपुर - 302 003
  दूरभाष - 0141-2562288
- मुद्रक
  जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि.
  एम.आई. रोड, जयपुर - 302 001

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
	प्रकाशकीय	V
1.	ग्रंथ एवं ग्रंथकारः सम्पादक की कलम से	1
2.	संकेत-सूची	7
3.	जीव अधिकार	10
4.	जीव-अजीव अधिकार	49
5.	मूल पाठ	80
6.	परिशिष्ट-1	
	(i) संज्ञा-कोश	89
	(ii) क्रिया-कोश	97
	(iii) कृदन्त-कोश	100
	(iv) विशेषण-कोश	104
	(v) सर्वनाम-कोश	109
	(vi) अव्यय-कोश	111
	परिशिष्ट-2	
	छंद	116
	परिशिष्ट-3	
	सहायक पुस्तकें एवं कोश	119

प्रकाशकीय

आचार्य कुन्दकुन्द-रचित **'समयसार (खण्ड-1) जीव-अजीव अधिकार'** व्याकरणात्मक हिन्दी-अनुवाद सहित पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है।

आचार्य कुन्दकुन्द का समय प्रथम शताब्दी ई. माना जाता है। वे दक्षिण के कोण्डकुन्द नगर के निवासी थे और उनका नाम कोण्डकुन्द था जो वर्तमान में कुन्दकुन्द के नाम से जाना जाता है। जैन साहित्य के इतिहास में आचार्य श्री का नाम आज भी मंगलमय माना जाता है। इनकी समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, रयणसार, अष्टपाहुड, दशभक्ति, बारस अणुवेक्खा कृतियाँ प्राप्त होती हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द-रचित उपर्युक्त कृतियों में से **'समयसार'** जैनधर्म-दर्शन को प्रस्तुत करनेवाली शौरसेनी भाषा में रचित एक रचना है। इस ग्रन्थ में कुल 415 गाथाएँ हैं जिनमें से खण्ड-1 में जीव-अजीव अधिकार से 1 से 68 तक की गाथाएँ ली गई हैं। इस खण्ड में आचार्य कुन्दकुन्द ने एकत्व/स्वसमय की अवधारणा, परसमय की अवधारणा, ज्ञानी-अज्ञानी के भेद को दार्शनिक-आध्यात्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने इस अधिकार में साधारण/लौकिक मनुष्य और असाधारण/अलौकिक मनुष्य को समझाने के लिए निश्चय-व्यवहार की एक अपूर्व पद्धति प्रस्तुत की है। इसके साथ ही यह भी बताया गया है कि एकत्व (आत्मानुभूति) की प्राप्ति के लिए अनात्मदृष्टि को छोड़कर आत्मस्थित-दृष्टि को अपनाना आवश्यक है।

'समयसार' का हिन्दी अनुवाद अत्यन्त सहज, सुबोध एवं नवीन शैली में किया गया है जो पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा। इसमें गाथाओं के शब्दों

का अर्थ व अन्वय दिया गया है। इसके पश्चात संज्ञा-कोश, क्रिया-कोश, कृदन्त-कोश, विशेषण-कोश, सर्वनाम-कोश, अव्यय-कोश दिया गया है। पाठक **'समयसार'** के माध्यम से शौरसेनी प्राकृत भाषा व जैनधर्म-दर्शन का समुचित ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी आशा है।

प्रस्तुत कृति का **खण्ड-1** प्रकाशित किया जा रहा है। जैन दार्शनिक साहित्य को आसानी से समझने और प्राकृत-अपभ्रंश की पाण्डुलिपियों के सम्पादन में समयसार का विषय सहायक होगा। श्रीमती शकुन्तला जैन, एम.फिल. ने बड़े परिश्रम से प्राकृत-अपभ्रंश भाषा सीखने-समझने के इच्छुक अध्ययनार्थियों के लिए **'समयसार (खण्ड-1)'** का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। अतः वे हमारी बधाई की पात्र हैं।

पुस्तक-प्रकाशन के लिए अपभ्रंश साहित्य अकादमी के विद्वानों विशेषतया श्रीमती शकुन्तला जैन के आभारी हैं जिन्होंने **'समयसार (खण्ड-1)'**का हिन्दी-अनुवाद करके जैनदर्शन व शौरसेनी प्राकृत के पठन-पाठन को सुगम बनाने का प्रयास किया है। पृष्ठ संयोजन के लिए फ्रैण्ड्स कम्प्यूटर्स एवं मुद्रण के लिए जयपुर प्रिण्टर्स धन्यवादार्ह है।

न्यायाधिपति नरेन्द्र मोहन कासलीवाल	महेन्द्र कुमार पाटनी	डॉ. कमलचन्द सोगाणी
अध्यक्ष	मंत्री	संयोजक
प्रबन्धकारिणी कमेटी		जैनविद्या संस्थान समिति
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी		जयपुर

वीर निर्वाण संवत्-2541

18.09.2015

ग्रन्थ एवं ग्रंथकार

संपादक की कलम से

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित समयसार भारतीय अध्यात्म का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक अमर कृति है। साधनामय जीवन की परिपूर्णता का दिग्दर्शन करानेवाला यह एक अपूर्व आगम ग्रन्थ है। परम साधना के मार्ग की एक सन्तुलित दृष्टि प्रदान करने के लिए समाज समयसार का सदैव ऋणी रहेगा। बाह्य और अन्तर का एक अप्रतिम/अनुपम संयोग यहाँ उपस्थित है। समाज और समाजातीत का विरोध-रहित अद्भुत समन्वय पाठक को यहाँ मिलेगा।

एवार्थ/स्व-समय की अवधारणा:

समयसार जीवन में आध्यात्मिक परिपूर्णता के आदर्श से प्रारम्भ होता है। यह परिपूर्णता ही 'एकत्व' है। यह ही 'स्व-समय' है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र के एकत्व में आत्मा का स्थित होना ही स्व-समय में ठहरना है (2)।

यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि एकत्व की अनुभूति आत्म-गुणों की संश्लिष्ट अनुभूति होती है। वह भिन्न-भिन्न गुणों की बिखरी हुई अनुभूति नहीं रहती है। ऐसी स्थिति में अभेद रत्नत्रय को प्राप्त की हुई एकत्वस्वरूप आत्मा स्व और पर की केवल 'ज्ञायक' ही होती है (6)। दूसरे शब्दों में एकत्वस्वरूप आत्मा पर से भिन्न/विभक्त है। इसलिए पर से भिन्न अभेदरत्नत्रयस्वरूप आत्मा को एकत्व विभक्त कहा गया है। यही आत्मानुभव की चरम स्थिति है। यही अरहंत और सिद्ध अवस्थाएँ हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द का कहना है कि यद्यपि दर्शन-ज्ञान-चारित्र के एकत्व की दृढ़ता को प्राप्त हुआ आत्मा प्रशंसनीय होता है, किन्तु बाह्य उलझनों

से छूटकर अंतरंग में प्रकाशमान आत्मा के एकत्व की प्राप्ति सुलभ नहीं है। इसके कारण के रूप में उनका कहना है कि अनादिकाल से व्यक्ति ने इन्द्रिय-विषयों की अधीनता को स्वीकार कर रखा है। इन्द्रिय-विषय ही उसे आकर्षित करते रहते हैं। इन्द्रिय-पुष्टि-तुष्टि का जीवन ही उसे स्वाभाविक लगता है। बाह्य विषयों में जकड़ा हुआ ही वह अपनी जीवन यात्रा चलाता है, उसे विषयों की वार्ता ही रुचिकर लगती है।

फलस्वरूप आचार्य कहते हैं कि- जैसे अनार्य व्यक्ति अनार्य भाषा के बिना कुछ भी पढ़ने/समझने के लिए समर्थ नहीं है, वैसे ही व्यवहार (बाह्यदृष्टि/लोकदृष्टि) के बिना परमार्थ/एकत्वरूप शुद्ध आत्मा का उपदेश देना संभव नहीं है (8)। इसलिए उन्होंने निश्चय और व्यवहार को उपदेश का माध्यम बनाया। निश्चय का अर्थ है: अन्तरदृष्टि , आत्मदृष्टि या स्वदृष्टि और व्यवहार का अर्थ है: बाह्यदृष्टि, लोकदृष्टि या परदृष्टि। उपर्युक्त कथन इस बात पुष्ट होता है जब आचार्य कहते हैं कि व्यवहारनय अभूदत्थ है अर्थात् अनात्मा में स्थित-दृष्टि है और निश्चयनय भूदत्थ है अर्थात् आत्मा में स्थित दृष्टि है (11)। जो अनात्मदृष्टि है वह बाह्यदृष्टि है, परदृष्टि है तथा आत्मा से परे लोकदृष्टि है। जो आत्मा में स्थित दृष्टि है- वह अन्तरदृष्टि है, स्वदृष्टि है तथा आत्मदृष्टि है। अतः आचार्य कहते हैं कि एकत्वस्वरूप शुद्ध आत्मा का निरूपण शुद्धनय/शुद्ध आत्मदृष्टि है। वह शुद्धनय/शुभ-अशुभ से परे एकत्वस्वरूप शुद्ध आत्मभाव की प्राप्ति में रुचि रखनेवाले के द्वारा ही समझा जाने योग्य है और जो अ-परम/शुभ-अशुभ आत्म भाव में दृढ़मना है वे ही व्यवहारनय (बाह्यदृष्टि/लोकदृष्टि/परदृष्टि) के द्वारा उपदेश दिए गए हैं, क्योंकि वे उसी को समझने के योग्य हैं (12)। जो नय आत्मा को कर्मबंधन से रहित, पर से अस्पर्शित, अन्य विभाव पर्यायों से रहित, स्थायी, अंतरंग भेद-रहित और अन्य से असंयुक्त देखता है, वह शुद्धनय है (14)।

निश्चय-व्यवहार समझाने की अपूर्व पद्धतिः

आचार्य कुन्दकुन्द ने साधारण/लौकिक मनुष्य और असाधारण/अलौकिक मनुष्य को समझाने के लिए यह पद्धति विकसित की है। इसके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं-

1. व्यवहारनय (बाह्यदृष्टि/लोकदृष्टि/परदृष्टि) से कहा जाता है कि ज्ञानी के दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। निश्चयदृष्टि (अन्तरदृष्टि/आत्मदृष्टि/स्वदृष्टि) से कहा जा सकता है कि आत्मा को एकत्वरूप से अनुभव करनेवाले के न दर्शन है , न ज्ञान है और न ही चारित्र है किन्तु वह तो एकमात्र शुद्ध ज्ञायक ही है (7)।

2. जो भाव श्रुतज्ञान (स्वसंवेदन/स्वानुभव) से शुद्धआत्मा को अनुभव करता है उसको महर्षि निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं। जो समस्त द्रव्य श्रुतज्ञान से पदार्थों को जानता है उसको जिन व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं (9-10)।

3. साधु के द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र सदैव आराधन किये जाने चाहिए। यह व्यवहारनय (बाह्यदृष्टि) से कहा गया है और उन तीनों को/उनके एकत्व को निश्चयनय (अन्तरदृष्टि) से आत्मा ही जानो (16)।

4. व्यवहारनय (बाह्यदृष्टि) कहता/कहती है कि जीव और देह एक समान ही है, परन्तु निश्चयनय (अन्तरदृष्टि) के अनुसार तो जीव और देह कभी एक समान नहीं होते हैं (27)।

5. जीव से भिन्न इस पुद्गलमय देह की स्तुति करके मुनि ऐसा मानता है कि- उसके द्वारा केवली भगवान स्तुति व वंदना किए गए है। वह (केवली के पुद्गलमय देह की) स्तुति निश्चयदृष्टि (आत्मदृष्टि) से उपयुक्त नहीं होती है, क्योंकि केवली के शरीर के पुद्गलमयी गुण (केवली के आत्मा के गुण) नहीं होते हैं। जो केवली के आत्म-गुणों की स्तुति करता है, वह वास्तव में केवली की स्तुति करता है (28-29)। ठीक ही है, जैसे नगर का वर्णन कर देने से राजा का

वर्णन नहीं होता है, वैसे ही देह की विशेषताओं की स्तुति कर लेने से शुद्ध आत्मारूपी राजा की स्तुति नहीं हो पाती है (30)। अतः समयसार का शिक्षण है कि जैसे कोई भी धन का इच्छुक मनुष्य राजा को जानकर उस पर विश्वास करता है और तब उसकी बड़ी सावधानीपूर्वक सेवा करता है, वैसे ही परम शान्ति के इच्छुक मनुष्य के द्वारा आत्मारूपी राजा समझा जाना चाहिये तथा श्रद्धा किया जाना चाहिये और फिर निस्संदेह वह ही अनुसरण किया जाना चाहिये (17, 18)।

6. राजा के साथ सेना के समूह को निकलते देखकर सारी सेना को राजा कहना व्यवहार (बाह्यदृष्टि) है, वहाँ तो वास्तव में एक ही राजा है अन्य तो उसकी सेना का समूह है। ठीक इसी प्रकार जीव से भिन्न (राग आदि) अध्यवसान आदि परिणामों को 'जीव' कहना व्यवहारनय है, क्योंकि वे जीव के साथ है, किन्तु उन रागादि परिणामों में निश्चयनय से 'जीव' तो एक ही है (47-48)।

7. जीव में कोई वर्ण नहीं है उसमें कोई गंध भी नहीं है, उसमें कोई रस भी नहीं है, उसमें कोई स्पर्श भी नहीं है, उसमें कोई शब्द भी नहीं है (50)। जीव में राग नहीं है, उसमें द्वेष भी नहीं है, न ही उसमें मोह आदि (है) (51)। ये वर्ण आदि भाव व्यवहारनय से जीव के होते हैं, किन्तु निश्चयनय के मत में उनमें से कोई भी जीव के नहीं है (56)। यह समझा जाना चाहिए कि इन वर्णादि के साथ जीव का सम्बन्ध दूध और जल के समान अस्थिर है। वे वर्णादि उस जीव में स्थिररूप से बिल्कुल ही नहीं रहते हैं, क्योंकि जीव तो ज्ञान-गुण से ओतप्रोत होता है (57)।

मार्ग में व्यक्ति को लूटा जाता हुआ देखकर सामान्य लोग कहते हैं कि यह मार्ग लूटा जाता है, किन्तु वास्तव में कोई मार्ग लूटा नहीं जाता है, लूटा तो व्यक्ति जाता है (58)। उसी प्रकार संसार में व्यवहारनय के आश्रित लोग कहते हैं कि वर्णादि जीव के हैं (60), किन्तु वास्तव में वे देह के गुण हैं, जीव

के नहीं। मुक्त जीवों में किसी भी प्रकार के वर्णादि नहीं होते हैं (61)। यदि इन गुणों को निश्चय से जीव का माना जाएगा तो जीव और अजीव में कोई भेद ही नहीं रहेगा (62)।

निश्चयनय से आत्मा में पुद्गल के कोई भी गुण नहीं हैं। अतः आत्मा रसरहित, रूपरहित, गंधरहित, स्पर्श से भी अप्रकट, चेतना गुणवाला, शब्दरहित, तर्क से ग्रहण न होनेवाला तथा न कहे हुए आकारवाला जानो, क्योंकि विभिन्न जीवों द्वारा विभिन्न शरीराकार ग्रहण किया हुआ होने के कारण कोई एक आकार नियत नहीं किया जा सकता है (49)।

पर-समय की अवधारणा:

आचार्य कुन्दकुन्द के अनुसार दर्शन-ज्ञान-चारित्र के एकत्व में स्थित आत्मा स्व-समय है, किन्तु जो जीव बाह्य उलझनों में लिप्त होकर राग-द्वेष भावों में एकरूप होकर पुद्गल कर्म-समूह में स्थित होता है वह पर-समय में अर्थात् पर में ठहरनेवाला आत्मा है (2)। दर्शन-ज्ञान-चारित्र के एकत्व की दृढ़ता को प्राप्त हुआ आत्मा सर्वत्र प्रशंसनीय होता है, किन्तु एकत्व में पर के साथ बंधन की कथा विसंवादिनि अर्थात् द्वन्द्व-जनक/अहं-जनक/दुख-जनक होती है (3)।

ज्ञानी-अज्ञानी का भेद (साधना-दृष्टि):

जो जीव अज्ञान से मूर्च्छित बुद्धिवाला है, वह बद्ध-देह और अबद्ध-देह से भिन्न पुद्गलात्मक वस्तु समूह में ममत्व दर्शाता है (23)। किन्तु ज्ञानी सभी भावों को पर समझकर त्याग देता है (35) और मानता है कि मैं (जीवात्मा) केवलमात्र उपयोग लक्षणवाला ही हूँ, मेरे किसी भी प्रकार का मोह (परभाव) नहीं है (36) मैं निश्चय ही शुद्ध हूँ, अनुपम हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ, सदा अमूर्तिक (अतीन्द्रिय) हूँ, कुछ भी दूसरी वस्तु परमाणु मात्र भी मेरी नहीं है (38)। यदि वह जीव द्रव्य पुद्गल द्रव्यरूप हो जाय या इसके विपरीत पुद्गल

द्रव्य जीवत्व को प्राप्त हो जाय तो (मैं) यह कहने के लिए समर्थ माना जा सकता है कि यह पुद्गल द्रव्य मेरा है, (25) किन्तु इस प्रकार का तादात्म्य सिद्धान्त विरुद्ध है। जीव व पुद्गल एक दृष्टि से भिन्न हैं। यहाँ जानना चाहिये कि जो ज्ञानी पुद्गलात्मक इन्द्रियों को जीतकर ज्ञान स्वभाव से परिपूर्ण आत्मा का अनुभव करता है, वह जितेन्द्रिय कहलाता है (31)। जो ज्ञानी पुद्गलात्मक मोहनीय कर्म को दबा कर अथवा नष्ट करके मोह को जीतकर ज्ञान स्वभाव से परिपूर्ण आत्मा का अनुभव करता है, वह ममता-रहित हुआ कहा जाता है (32-33)।

एकत्वरूप आध्यात्मिक आदर्श की प्राप्तिः

एकत्व (आत्मानुभूति) की प्राप्ति के लिए अनात्मदृष्टि को छोड़कर आत्मस्थित-दृष्टि को अपनाना आवश्यक है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि आत्मस्थित-दृष्टि के आश्रित जीव सम्यग्दृष्टि होता है (11) और वह इस दृष्टि को अपनाते हुए मोक्ष तक की यात्रा में सफल हो जाता है। अतः आत्मस्थित दृष्टि से जाने गए जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव-बंध, संवर-निर्जरा और मोक्ष- ये सब 'एकत्व' की अन्तिम मंजिल तक जीव को पहुँचा देते हैं। इसलिए वे सामूहिक रूप से सम्यक्त्व ही हैं (13)। दूसरे शब्दों में, आत्मस्थित दृष्टि से (निश्चयनय से) जाने गए नवपदार्थ सम्यग्दृष्टि से सम्पन्न हो जाते हैं।

डॉ. कमलचन्द सोगाणी
पूर्व प्रोफेसर दर्शनशास्त्र, दर्शनशास्त्र विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
एवं निदेशक
जैनविद्या संस्थान-अपभ्रंश साहित्य अकादमी

◈◈◈

समयसार को अच्छी तरह समझने के लिए गाथा के प्रत्येक शब्द जैसे- संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, कृदन्त आदि के लिए व्याकरणिक विश्लेषण में प्रयुक्त संकेतों का ज्ञान होने से प्रत्येक शब्द का अर्थ समझा जा सकेगा।

संकेत–सूची

अ – अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)

अक - अकर्मक क्रिया

अनि - अनियमित

कर्म - कर्मवाच्य

नपुं. - नपुंसकलिंग

पु. - पुल्लिंग

भवि - भविष्यत्काल

भूकृ - भूतकालिक कृदन्त

व - वर्तमानकाल

वकृ - वर्तमान कृदन्त

वि - विशेषण

विधि - विधि

विधिकृ - विधि कृदन्त

संकृ - संबंधक कृदन्त

सक - सकर्मक क्रिया

सवि - सर्वनाम विशेषण

स्त्री. - स्त्रीलिंग

हेकृ - हेत्वर्थक कृदन्त

•()- इस प्रकार के कोष्ठक में मूल शब्द रखा गया है।

•[()+()+().....] इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर + चिह्न शब्दों में संधि का द्योतक है। यहाँ अन्दर के कोष्ठकों में गाथा के शब्द ही रख दिये गये हैं।

•[()-()-().....] इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर '-' चिह्न समास का द्योतक है।

•{[()+()+().....]वि} जहाँ समस्त पद विशेषण का कार्य करता है वहाँ इस प्रकार के कोष्ठक का प्रयोग किया गया है।

•जहाँ कोष्ठक के बाहर केवल संख्या (जैसे 1/1, 2/1 आदि) ही लिखी है वहाँ उस कोष्ठक के अन्दर का शब्द '**संज्ञा**' है।

•जहाँ **कर्मवाच्य, कृदन्त** आदि प्राकृत के नियमानुसार नहीं बने हैं वहाँ कोष्ठक के बाहर '**अनि**' भी लिखा गया है।

क्रिया–रूप निम्नप्रकार लिखा गया है–

1/1 **अक** या **सक** - उत्तम पुरुष/एकवचन
1/2 **अक** या **सक** - उत्तम पुरुष/बहुवचन
2/1 **अक** या **सक** - मध्यम पुरुष/एकवचन
2/2 **अक** या **सक** - मध्यम पुरुष/बहुवचन
3/1 **अक** या **सक** - अन्य पुरुष/एकवचन
3/2 **अक** या **सक** - अन्य पुरुष/बहुवचन

विभक्तियाँ निम्नप्रकार लिखी गई हैं–

1/1 - प्रथमा/एकवचन
1/2 - प्रथमा/बहुवचन
2/1 - द्वितीया/एकवचन
2/2 - द्वितीया/बहुवचन
3/1 - तृतीया/एकवचन
3/2 - तृतीया/बहुवचन
4/1 - चतुर्थी/एकवचन
4/2 - चतुर्थी/बहुवचन
5/1 - पंचमी/एकवचन
5/2 - पंचमी/बहुवचन
6/1 - षष्ठी/एकवचन
6/2 - षष्ठी/बहुवचन
7/1 - सप्तमी/एकवचन
7/2 - सप्तमी/बहुवचन
8/1 - संबोधन/एकवचन
8/2 - संबोधन/बहुवचन

जीव अधिकार

(गाथा 1 से गाथा 38 तक)

1. वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।।

वंदित्तु	(वंद) संकृ	वंदन करके
सव्वसिद्धे	[(सव्व) सवि-(सिद्ध) 2/2]	सब सिद्धों को
धुवमचलमणोवमं	[(धुवं)+(अचलं)+(अणोवमं)]	
	धुवं (धुव) 2/1 वि	शाश्वत
	अचलं (अचल) 2/1 वि	स्वरूप/स्वभाव में दृढ़
	अणोवमं (अणोवम) 2/1 वि	अतुलनीय
गदिं	(गदि) 2/1	गति को
पत्ते	(पत्त) भूकृ 2/2 अनि	प्राप्त हुए
वोच्छामि	(वोच्छ) भवि 1/1 सक	कहूँगा
समयपाहुडमिणमो	[(समयपाहुडं)+(इणमो)]	
	समयपाहुडं (समयपाहुड) 2/1	समयपाहुड को
	इणमो (इम) 2/1 सवि	इस
सुदकेवलीभणिदं	[(सुदकेवलि→सुदकेवली)[1]-	श्रुतकेवलियों द्वारा
	(भण) भूकृ 2/1]	प्रतिपादित

अन्वय- धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते सव्वसिद्धे वंदित्तु सुदकेवलीभणिदं समयपाहुडमिणमो वोच्छामि।

अर्थ- (आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि) (मैं) शाश्वत, स्वरूप/स्वभाव में दृढ़ और अतुलनीय (सिद्ध) गति को प्राप्त हुए सब सिद्धों को वंदन करके श्रुतकेवलियों द्वारा प्रतिपादित इस समयपाहुड को कहूँगा।

---

1. प्राकृत-व्याकरणः पृष्ठ 16 (ii)
यहाँ छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'सुदकेवलि' का 'सुदकेवली' हुआ है।

नोटः कोष्ठकों का प्रयोग संपादक द्वारा किया गया है।

2. **जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।**
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं॥

जीवो	(जीव) 1/1	जीव
चरित्तदंसणणाणट्ठिदो	[(चरित्त)-(दंसण)-(णाण)-(ट्ठिद) भूकृ 1/1 अनि]	दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित
तं	(त) 2/1 सवि	उसको
हि	अव्यय	ही
ससमयं	(स-समय) 2/1	स्वसमय
जाण	(जाण) विधि 2/1 सक	जानो
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं	[(पोग्गल)-(कम्म)-(पदेस)-(ट्ठिद) भूकृ 2/1 अनि]	पुद्गल कर्म-समूह में स्थित
च	अव्यय	किन्तु
तं	(त) 2/1 सवि	उसको
जाण	(जाण) विधि 2/1 सक	जानो
परसमयं	[(पर) वि-(समय) 2/1]	परसमय

अन्वय- जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो हि तं ससमयं जाण च पोग्गल-कम्मपदेसट्ठिदं तं परसमयं जाण।

अर्थ- (जो) जीव (बाह्य उलझनों से छूटकर) (अपने अंतरंग स्वरूप) दर्शन-ज्ञान-चारित्र (के एकत्व) में ही स्थित (होता है) उसको (तुम) स्वसमय अर्थात् स्व में ठहरनेवाला आत्मा जानो, किन्तु (बाह्य उलझनों में लिप्त) (राग-द्वेष भावों में एकरूप हुए) पुद्गल कर्म-समूह में स्थित उस (जीव) को तुम परसमय अर्थात् पर में ठहरनेवाला आत्मा जानो।

3. एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।।

एयत्तणिच्छयगदो	[(एयत्त)-(णिच्छय)-(गद) भूकृ 1/1 अनि]	एकत्व का उद्देश्य प्राप्त कर लिया गया
समओ	(समअ) 1/1	आत्मा
सव्वत्थ	अव्यय	सर्वत्र
सुन्दरो	(सुन्दर) 1/1 वि	प्रशंसनीय
लोए	(लोअ) 7/1	लोक में
बंधकहा	[(बंध)-(कहा) 1/1]	बंधन की कथा
एयत्ते	(एयत्त) 7/1	एकत्व में
तेण	अव्यय	इसलिए
विसंवादिणी	(विसंवादिणि) 1/1 वि	विसंवादिनि
होदि	(हो) व 3/1 अक	होती है

अन्वय- एयत्तणिच्छयगदो समओ लोए सव्वत्थ सुन्दरो तेण एयत्ते बंधकहा विसंवादिणी होदि।

अर्थ- (जिसके द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र के) एकत्व का उद्देश्य प्राप्त कर लिया गया (है) (वह) आत्मा लोक में सर्वत्र प्रशंसनीय (होता है) (यह) (स्वसमय) (है)। इसलिए एकत्व (की स्थिति) में (न ठहरकर) (जीव की पररूप पुद्गल के साथ) बंधन की कथा विसंवादिनि (द्वन्द्व-जनक/अहं-जनक/दुख-जनक) होती है (यह) (परसमय) (है)।

अथवा

अर्थ- (दर्शन-ज्ञान-चारित्र के) एकत्व की दृढ़ता को प्राप्त हुआ आत्मा सर्वत्र प्रशंसनीय (होता है)। इसलिए (पूर्व कथित) एकत्व में (पर के साथ) बंधन की कथा विसंवादिनि (द्वन्द्व-जनक/अहं-जनक/दुख-जनक) होती है।

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

4. सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥

सुदपरिचिदाणुभूदा	[(सुदपरिचिदा)+(अणुभूदा)]	
	सुदा[1] (सुद) भूक 1/1 अनि	सुनी हुई
	परिचिदा (परिचिद) भूक 1/1 अनि	जानी हुई
	अणुभूदा(अणुभूद)भूक 1/1अनि	अनुभव की हुई
सव्वस्स[2]	(सव्व) 6/1→3/1 सवि	सबके द्वारा
वि	अव्यय	ही
कामभोगबंधकहा	[(काम)-(भोग)-(बंध)-(कहा) 1/1]	काम-भोग के निरूपण की कथा
एयत्तस्सुवलंभो	[(एयत्तस्स)+(उवलंभो)]	
	एयत्तस्स (एयत्त) 6/1	एकत्व की
	उवलंभो (उवलंभ) 1/1	प्राप्ति
णवरि	अव्यय	केवल
ण	अव्यय	नहीं
सुलहो	(सुलह) 1/1 वि	सुलभ
विहत्तस्स	(विहत्त) भूक 6/1 अनि	भिन्न की गई के

अन्वय- सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा सुदपरिचिदाणुभूदा णवरि विहत्तस्स एयत्तस्सुवलंभो सुलहो ण।

अर्थ- सबके (मनुष्यों के) द्वारा ही काम-भोग (इन्द्रिय-विषय) के निरूपण की कथा सुनी हुई (है), जानी हुई (है) तथा अनुभव की हुई (है), केवल (पुद्गल से) भिन्न की गई (अंतरंग में प्रकाशमान) (आत्मा) के एकत्व (दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित आत्मा) की प्राप्ति सुलभ नहीं (है)।

---

1. समास में अधिकतर प्रथम शब्द का अंतिम स्वर ह्रस्व हो तो दीर्घ हो जाता है और दीर्घ हो तो ह्रस्व हो जाता है। (प्राकृतव्याकरणः पृष्ठ 21)
2. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत-व्याकरणः 3-134)

5. तं एयत्तविहत्तं दाए हं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।

तं	(त) 2/1 सवि	उस
एयत्तविहत्तं	[(एयत्त)-(विहत्त) भूकृ 2/1 अनि]	भिन्न किये गये एकत्व को
दाए	(दाअ) व 1/1 सक 'अ' विकरण	प्रस्तुत करता हूँ
हं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
अप्पणो	(अप्प) 6/1	आत्मा के
सविहवेण	(स-विहव) 3/1	निज-वैभव से/ निज की स्वशक्ति से
जदि	अव्यय	यदि
दाएज्ज[1]	(दाअ) व/भवि 1/1 सक 'अ' विकरण	दूँगा
पमाणं	(पमाण) 2/1	प्रमाण
चुक्केज्ज[1]	(चुक्क) विधि 1/1 अक	चूक जाऊँ
छलं	(छल) 1/1	दोषपूर्ण दलील
ण	अव्यय	नहीं
घेत्तव्वं	(घेत्तव्व) विधिकृ 1/1 अनि	ग्रहण की जानी चाहिये

अन्वय- एयत्तविहत्तं तं हं अप्पणो सविहवेण दाए पमाणं दाएज्ज जदि चुक्केज्ज छलं ण घेतव्वं।

अर्थ- (पर द्रव्यों से) भिन्न किये गये उस (रत्नत्रय स्वरूप आत्मा के) (अंतरंग) एकत्व (अभेदता) को मैं **आत्मा के निज-वैभव से** प्रस्तुत करता हूँ। (मैं स्वीकार करने के लिए) प्रमाण दूँगा, यदि (मैं) चूक जाऊँ (तो) (मेरी) दोषपूर्ण दलील ग्रहण नहीं की जानी चाहिये।

अथवा

अर्थ- (पर द्रव्यों से) भिन्न उस (रत्नत्रय स्वरूप आत्मा के) (अंतरंग) एकत्व (अभेदता) को मैं **निज की स्व-शक्ति से** प्रस्तुत करता हूँ। (मैं स्वीकार करने के लिए) प्रमाण दूँगा। यदि मैं चूक जाऊँ तो (मेरी) दोषपूर्ण दलील ग्रहण नहीं की जानी चाहिये।

---

1. हेम-प्राकृत-व्याकरणः 3-177
विस्तार के लिए देखें: प्रौढ प्राकृत-अपभ्रंश-रचना सौरभ (भाग-2), पृष्ठ 32

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

6. ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव।।

ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
होदि	(हो) व 3/1 अक	होता है
अप्पमत्तो	(अप्पमत्त) 1/1 वि	अप्रमत्त
ण	अव्यय	न
पमत्तो	(पमत्त) 1/1 वि	प्रमत्त
जाणगो	(जाणग) 1/1 वि	ज्ञायक
दु	अव्यय	और
जो	(ज) सवि 1/1	जो
भावो	(भाव) 1/1	भाव
एवं	अव्यय	इस प्रकार
भणंति	(भण) व 3/2 सक	कहते हैं
सुद्धं	(सुद्ध) 2/1 वि	शुद्ध
णादो	(णा) भूक 1/1	जाना गया
जो	(ज) सवि 1/1	जो
सो	(त) सवि 1/1	वह
दु	अव्यय	चूँकि
सो	(त) सवि 1/1	वह
चेव	अव्यय	ही

अन्वय- जो जाणओ भावा सो ण वि अप्पमत्तो होदि दु ण पमत्तो एवं सुद्धं भणंति दु जो णादो सो चेव।

अर्थ- जो ज्ञायक भाव (है) वह न ही अप्रमत्त होता है और न प्रमत्त (होता है)। इस प्रकार (जिनेन्द्र देव) (इसको) शुद्ध कहते हैं। चूँकि जो (आत्मा) (पर को जानने की अवस्था में) (ज्ञायकरूप से) जाना गया (है) वह (स्व को जानने की अवस्था में भी ज्ञायक) ही (है) अर्थात् स्व को जाननेवाला है।

अथवा

अर्थ- जो (आत्मा) न प्रमत्त और न ही अप्रमत्त (ये दोनों कर्म-जनित अवस्थाएँ हैं) (वह) (तो) (कर्मों से परे स्वभाव से) ज्ञायक (ही) जाना गया है। इस प्रकार (जो) (ज्ञायक) भाव (है) उसको (जिनदेव) शुद्ध कहते हैं। चूँकि जो (आत्मा) (स्वभाव से) (ज्ञायक) (है) वह (सब अवस्थाओं में) (ज्ञायक) ही रहता है।

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

7. ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो।।

ववहारेणुवदिस्सदि	[(ववहारेण)+(उवदिस्सदि)]	
	ववहारेण (ववहार) 3/1	व्यवहार से
	उवदिस्सदि (उवदिस्स) व कर्म 3/1 अनि	कहा जाता है
णाणिस्स	(णाणि) 6/1 वि	ज्ञानी के
*चरित्त	(चरित्त) 1/1	चारित्र
दंसणं	(दंसण) 1/1	दर्शन
णाणं	(णाण) 1/1	ज्ञान
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
णाणं	(णाण) 1/1	ज्ञान
ण	अव्यय	न
चरित्तं	(चरित्त) 1/1	चारित्र
ण	अव्यय	न
दंसणं	(दंसण) 1/1	दर्शन
जाणगो	(जाणग) 1/1 वि	ज्ञायक
सुद्धो	(सुद्ध) 1/1 वि	शुद्ध

अन्वय- ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स दंसणं णाणं चरित्त ण दंसणं ण णाणं ण वि चरित्तं सुद्धो जाणगो।

अर्थ- व्यवहार (बाह्यदृष्टि/लोकदृष्टि/परदृष्टि) से कहा जाता है (कि) ज्ञानी के दर्शन, ज्ञान और चारित्र (है)। (निश्चयदृष्टि/अन्तरदृष्टि/आत्मदृष्टि/स्वदृष्टि से) (आत्मा को एकत्वरूप से अनुभव करनेवाले के) न दर्शन (है), न ज्ञान (है) और न ही चारित्र (है) (किन्तु)(वह) (तो) (एकमात्र) शुद्ध ज्ञायक (ही) (है)।

---

*प्राकृत में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है।

(पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

8. जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं॥

जह	अव्यय	जैसे
ण	अव्यय	नहीं
वि	अव्यय	कुछ भी
सक्कमणज्जो	[(सक्कं)+(अणज्जो)]	
	सक्कं (सक्क)	समर्थ
	विधिकृ 1/1 अनि	
	अणज्जो (अणज्ज) 1/1 वि	अनार्य
अणज्जभासं[1]	[(अणज्ज) वि-(भासा) 2/1]	अनार्य भाषा
विणा	अव्यय	बिना
दु	अव्यय	पादपूरक
गाहेदुं	(गाह) हेकृ	पढ़ने/समझने के लिए
तह	अव्यय	वैसे ही
ववहारेण[1]	(ववहार) 3/1	व्यवहार के
विणा	अव्यय	बिना
परमत्थुवदेसणमसक्कं	[(परमत्थ)+(उवदेसणं)+ (असक्कं)]	
	[(परमत्थ)-(उवदेसण) 1/1]	परमार्थ का उपदेश देना
	असक्कं (असक्क)	संभव नहीं
	विधिकृ 1/1 अनि	

अन्वय- जह अणज्जो अणज्जभासं विणा दु वि गाहेदुं सक्कं ण तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं।

अर्थ- जैसे अनार्य (व्यक्ति) अनार्य भाषा के बिना कुछ भी पढ़ने/समझने के लिए समर्थ नहीं (है), वैसे ही व्यवहार (बाह्यदृष्टि/लोकदृष्टि) के बिना परमार्थ (एकत्वरूप शुद्ध आत्मा) का उपदेश देना संभव नहीं (है)।

---

1. 'बिना' के योग में द्वितीया, तृतीया तथा पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

9. जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।।

10. जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।

जो	(ज) 1/1 सवि	जो
हि	अव्यय	ही
सुदेणहिगच्छदि	[(सुदेण)+(अहिगच्छदि)]	
	सुदेण (सुद) 3/1	श्रुतज्ञान से
	अहिगच्छदि (अहिगच्छ) व 3/1 सक	अनुभव करता है
अप्पाणमिणं	[(अप्पाणं)+(इणं)]	
	अप्पाणं (अप्पाण) 2/1	आत्मा को
	इणं (इम) 2/1 सवि	इस
तु	अव्यय	पादपूरक
केवलं	(केवल) 2/1 वि	एकमात्र
सुद्धं	(सुद्ध) 2/1 वि	शुद्ध
तं	(त) 2/1 सवि	उसको
सुदकेवलिमिसिणो	[(सुदकेवलिं)+(इसिणो)]	
	सुदकेवलिं (सुदकेवलि) 2/1	श्रुतकेवली
	इसिणो (इसि) 1/2	महर्षि
भणंति	(भण) व 3/2 सक	कहते हैं
लोयप्पदीवयरा	[(लोय)-(प्पदीवयर)1/2 वि]	लोक के प्रकाशक
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
सुदणाणं	[(सुद)-(णाण) 2/1]	श्रुतज्ञान को
सव्वं	(सव्व) 2/1 सवि	समस्त

जाणदि	(जाण) व 3/1 सक	जानता है
सुदकेवलिं	(सुदकेवलि) 2/1	श्रुतकेवली
तमाहु	[(तं)+(आहु)]	
	तं (त) 2/1 सवि	उसको
	आहु (आहु) भू 3/2 सक अनि	कहा है
जिणा	(जिण) 1/2	अरहंतों ने
णाणं	(णाण) 1/1	ज्ञान
अप्पा	(अप्प) 1/1	आत्मा
सव्वं	(सव्व) 1/1 सवि	समस्त
जम्हा	अव्यय	क्योंकि
सुदकेवली	(सुदकेवलि) 1/1	श्रुतकेवली
तम्हा	अव्यय	इसलिए

अन्वय- जो सुदेण केवलं अप्पाणमिणं सुद्धं अहिगच्छदि तु तं लोयप्पदीवयरा सुदकेवलिमिसिणो भणंति जो सव्वं सुदणाणं जाणदि तमाहु जिणा सुदकेवलिं जम्हा सव्वं णाणं अप्पा हि तम्हा सुदकेवली।

अर्थ- जो (जीव) (भाव) (स्वसंवेदन/स्वानुभव) श्रुतज्ञान से एकमात्र (पूर्व कथित) इस शुद्धआत्मा का ही अनुभव करता है उसको लोक के प्रकाशक महर्षि (श्रमण) श्रुतकेवली कहते हैं। (यह निश्चयनय से किया गया कथन है)। जो (जीव) समस्त श्रुतज्ञान को जानता है उसको (भी) अरहंतों ने श्रुतकेवली कहा है, क्योंकि (उसके लिए) समस्त (श्रुत) ज्ञान (अंतिम रूप से परिणत) आत्मा (ही) (है)। इसलिए (वह) (भी) श्रुतकेवली (है)। (यह व्यवहारनय से किया गया कथन है)।

---

1. पिशलः प्राकृत भाषाओंका व्याकरण, पृष्ठ 755

11. ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।

ववहारोऽभूदत्थो	[(ववहारो)+(अभूदत्थो)]	
	ववहारो (ववहार) 1/1	व्यवहारनय
	अभूदत्थो (अभूदत्थ)[1] 1/1 वि	अनात्मा में स्थित
भूदत्थो	(भूदत्थ)[1] 1/1 वि	आत्मा में स्थित
देसिदो	(देस) भूक 1/1	कहा गया है
दु	अव्यय	तथा
सुद्धणओ	[(सुद्ध) वि-(णअ) 1/1]	शुद्धनय/निश्चयनय
भूदत्थमस्सिदो	[(भूदत्थं)+(अस्सिदो)]	
	भूदत्थं[2] (भूदत्थ)	आत्मा में स्थित दृष्टि
	2/1→7/1 वि	पर
	अस्सिदो (अस्सिद)	आश्रित
	भूक 1/1 अनि	
खलु	अव्यय	ही
सम्मादिट्ठी	(सम्मादिट्ठि) 1/1 वि	सम्यग्दृष्टि
हवदि	(हव) व 3/1 अक	होता है
जीवो	(जीव) 1/1	जीव

अन्वय- ववहारोऽभूदत्थो दु सुद्धणओ भूदत्थो देसिदो भूदत्थमस्सिदो खलु जीवो सम्मादिट्ठी हवदि।

अर्थ- व्यवहारनय अनात्मा में स्थित (भाव) (होता है) तथा शुद्धनय/निश्चयनय आत्मा में स्थित (भाव) कहा गया (है)। आत्मा में स्थित दृष्टि पर आश्रित जीव (व्यक्ति) ही सम्यग्दृष्टि होता है।

---

1. 'अभूदत्थ' और 'भूदत्थ' का अर्थ नियमसार के शब्द 'मज्झत्थ' (अंतरंग में स्थित) के आधार से किया गया है। (नियमसारः गाथा 82)
इसलिए व्यवहारनय बाह्यदृष्टि/लोकदृष्टि/परदृष्टि कहा जा सकता है और निश्चयनय अंतरंगदृष्टि/आत्मदृष्टि/स्वदृष्टि कहा जा सकता है।
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरणः 3-137)

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

12. सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।

सुद्धो	(सुद्ध) 1/1 वि	शुद्धनय
सुद्धादेसो	[(सुद्ध)+(आदेसो)]	
	[(सुद्ध) वि-(आदेस) 1/1]	शुद्ध का निरूपण
णादव्वो	(णा) विधिकृ 1/1	समझा जाने योग्य
परमभावदरिसीहिं	[(परम) वि-(भाव)-	शुद्ध आत्मभाव
	(दरिसि) 3/2 वि]	(की प्राप्ति) में रुचि रखनेवाले के द्वारा
ववहारदेसिदा	[(ववहार)-(देस) भूकृ 1/2]	व्यवहारनय के द्वारा उपदेश दिए गए
पुण	अव्यय	और
जे	(ज) 1/2 सवि	जो
दु	अव्यय	ही
अपरमे	(अ-परम) 7/1 वि	अ-परम में
ट्ठिदा	(ट्ठिद) भूकृ 1/2 अनि	दृढ़मना
भावे	(भाव) 7/1	(आत्म) भाव में

अन्वय- सुद्धादेसो सुद्धो परमभावदरिसीहिं णादव्वो पुण जे अपरमे भावे ट्ठिदा दु ववहारदेसिदा।

अर्थ- (एकत्व स्वरूप) शुद्ध (आत्मा) का निरूपण शुद्धनय (शुद्ध आत्मदृष्टि है)। (वह) (शुद्धनय/शुभ-अशुभ से परे) शुद्ध आत्मभाव (की प्राप्ति) में रुचि रखनेवाले के द्वारा (ही) समझा जाने योग्य (है) और जो अ-परम (शुभ-अशुभ) (आत्म) भाव में दृढ़मना (है) (वे) ही व्यवहारनय (बाह्यदृष्टि/लोकदृष्टि/परदृष्टि) के द्वारा उपदेश दिए गए (हैं) (क्योंकि वे उसी को समझने के योग्य हैं)।

13. भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।

भूदत्थेणाभिगदा	[(भूदत्थेण)+(अभिगदा)]	
	भूदत्थेण (भूदत्थ) 3/1 वि	आत्मा में लगी
	अभिगदा (अभिगद)	हुई दृष्टि द्वारा
	भूकृ 1/2 अनि	जाने गए
जीवाजीवा	[(जीव)+(अजीवा)]	
	[(जीव)-(अजीव) 1/2]	जीव, अजीव
य	अव्यय	और
पुण्णपावं	[(पुण्ण)-(पाव) 1/1]	पुण्य, पाप
च	अव्यय	और
आसवसंवरणिज्जर	[(आसव)-(संवर)-	आस्रव, संवर,
	(णिज्जरा→णिज्जर)[1] 1/1]	निर्जरा
बंधो	(बंध) 1/1	बंध
मोक्खो	(मोक्ख) 1/1	मोक्ष
य	अव्यय	और
सम्मत्तं	(सम्मत्त) 1/1	सम्यग्दर्शन

अन्वय- भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च आसवसंवर-णिज्जर बंधो य मोक्खो सम्मत्तं।

अर्थ- आत्मा में लगी हुई दृष्टि द्वारा जाने गए- जीव और अजीव, पुण्य और पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष सम्यग्दर्शन (कहे गए हैं) (क्योंकि इस प्रकार ही आत्मानुभव की ओर गति संभव है)।

---

1. यहाँ छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'णिज्जरा' के स्थान पर 'णिज्जर' किया गया है।

14. जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि।।

जो	(ज) 1/1 सवि	जो
पस्सदि	(पस्स) व 3/1 सक	देखता है
अप्पाणं	(अप्पाण) 2/1	आत्मा को
अबद्धपुट्ठं	[(अबद्ध)+(अपुट्ठं)]	
	[(अबद्ध) भूकृ अनि-	कर्मबंधन से रहित,
	(अपुट्ठ) भूकृ 2/1 अनि]	अस्पर्शित
अणण्णयं	(अणण्णय) 2/1 वि	अन्य से रहित
	'य' स्वार्थिक	
णियदं	(णियद) 2/1 वि	स्थायी
अविसेसमसंजुत्तं	[(अविसेसं)+(असंजुत्तं)]	
	अविसेसं (अविसेस) 2/1 वि	अंतरंग भेद-रहित
	असंजुत्तं (असंजुत्त)	अन्य से असंयुक्त
	भूकृ 2/1 अनि	
तं	(त) 2/1 सवि	उसको
सुद्धणयं	(सुद्धणय) 2/1	शुद्धनय
वियाणीहि[1]	(वियाण) विधि 2/1 सक	जानो

अन्वय- जो अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं अविसेसमसंजुत्तं पस्सदि तं सुद्धणयं वियाणीहि।

अर्थ- जो (नय) आत्मा को कर्मबंधन से रहित, (पर से) अस्पर्शित, अन्य (विभाव पर्यायों) से रहित, स्थायी, अंतरंग भेद-रहित और अन्य (रागादि) से असंयुक्त देखता है उसको (तुम) शुद्धनय जानो।

---

1. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पिशल, पृष्ठ 691

15. जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं[1] पस्सदि जिणसासणं सव्वं।।

जो	(ज) 1/1 सवि	जो
पस्सदि	(पस्स) व 3/1 सक	जानता है
अप्पाणं	(अप्पाण) 2/1	आत्मा को
अबद्धपुट्ठं	[(अबद्ध)+(अपुट्ठं)]	
	[(अबद्ध) भूकृ अनि-	कर्मबंधन से रहित,
	(अपुट्ठ) भूकृ 2/1 अनि]	अस्पर्शित
अणण्णमविसेसं	[(अणण्णं)+(अविसेसं)]	
	अणण्णं (अणण्ण) 2/1 वि	अन्य से रहित
	अविसेसं (अविसेस) 2/1 वि	अंतरंग भेद-रहित
अपदेससुत्तमज्झं	[(अपदेस)-(सुत्त)-	उपदेश और साररूप
	(मज्झ) 2/1 वि]	में अन्तर्वर्ती
पस्सदि	(पस्स) व 3/1 सक	जानता है
जिणसासणं	[(जिण)-(सासण) 2/1]	जिनशासन को
सव्वं	(सव्व) 2/1 सवि	सम्पूर्ण

अन्वय- जो अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं पस्सदि अपदेससुत्त-मज्झं सव्वं जिणसासणं पस्सदि।

अर्थ- जो (नय) आत्मा को कर्मबंधन से रहित, (पर से) अस्पर्शित अन्य (विभाव पर्यायों) से रहित, अंतरंग भेद-रहित जानता है (वह) उपदेश (से प्राप्त द्रव्यश्रुत) और साररूप में (अनुभूत भावश्रुत के कारण) अन्तर्वर्ती सम्पूर्ण जिनशासन को जानता है।

---

1. अपदेससंतमज्झं के स्थान पर अपदेससुत्तमज्झं पाठ लिया गया है।
2. अपदेस = उपदेश (आप्टेः संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश)

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

16. दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।।

दंसणणाणचरित्ताणि-	[(दंसण)-(णाण)-(चरित्त) 1/2]	दर्शन-ज्ञान-चारित्र
सेविदव्वाणि	(सेव) विधिकृ 1/2	आराधन किए जाने चाहिये
साहुणा	(साहु) 3/1	साधु के द्वारा
णिच्चं	अव्यय	सदैव
ताणि	(त) 2/2 सवि	उन
पुण	अव्यय	और
जाण	(जाण) विधि 2/1 सक	जानो
तिण्णि वि	(ति वि) 2/2 वि	तीनों को
अप्पाणं	(अप्पाण) 2/1	आत्मा
चेव	अव्यय	ही
णिच्छयदो[1]	(णिच्छय) 5/1	निश्चयनय से

अन्वय- साहुणा दंसणणाणचरित्ताणि णिच्चं सेविदव्वाणि पुण ताणि तिण्णि वि णिच्छयदो अप्पाणं चेव जाण।

अर्थ- साधु के द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र सदैव आराधन किये जाने चाहिये (यह व्यवहारनय (बाह्यदृष्टि) से कहा गया है) और (तुम) उन तीनों को (उनके एकत्व को) निश्चयनय (अन्तरदृष्टि) से आत्मा ही जानो।

---

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'णिच्छयादो' का 'णिच्छयदो' किया गया है।

17. जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण।।

18. एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण।।

जह	अव्यय	जैसे
णाम	अव्यय	पादपूरक
को	(क) 1/1 सवि	कोई
वि	अव्यय	भी
पुरिसो	(पुरिस) 1/1	मनुष्य
रायाणं	(रायाणं) 2/1 अनि	राजा को
जाणिऊण	(जाण) संकृ	जानकर
सद्दहदि	(सद्दह) व 3/1 सक	विश्वास करता है
तो	अव्यय	तब
तं	(त) 2/1 सवि	उसकी
अणुचरदि	(अणुचर) व 3/1 सक	सेवा करता है
पुणो	अव्यय	और
अत्थत्थीओ	(अत्थत्थीअ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक प्रत्यय	धन का इच्छुक
पयत्तेण	(पयत्तेण) 3/1 तृतीयार्थक अव्यय	सावधानीपूर्वक
एवं	अव्यय	वैसे
हि	अव्यय	ही

जीवराया	[(जीव)-(राय) 1/1]	आत्मारूपी राजा
णादव्वो	(णा) विधिकृ 1/1	समझा जाना चाहिये
तह य	अव्यय	तथा
सद्दहेदव्वो	(सद्दह) विधिकृ 1/1	श्रद्धा किया जाना चाहिये
अणुचरिदव्वो	(अणुचर) विधिकृ 1/1	अनुभव किया जाना चाहिये
य	अव्यय	और
पुणो	अव्यय	फिर
सो	(त) 1/1 सवि	वह
चेव	अव्यय	ही
दु	अव्यय	निस्सन्देह
मोक्खकामेण	[(मोक्ख)-(काम) 3/1 वि]	मोक्ष के इच्छुक (मनुष्य) के द्वारा

अन्वय- जह णाम को वि अत्थत्थीओ पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि पुणो तो तं पयत्तेण अणुचरदि एवं हि मोक्खकामेण जीवराया सद्दहेदव्वो तह य णादव्वो य पुणो दु सो चेव अणुचरिदव्वो।

अर्थ- जैसे कोई भी धन का इच्छुक मनुष्य राजा को जानकर (उस पर) विश्वास करता है और तब उसकी सावधानीपूर्वक सेवा करता है वैसे ही मोक्ष के इच्छुक (मनुष्य) के द्वारा आत्मारूपी राजा श्रद्धा किया जाना चाहिये तथा समझा जाना चाहिये और फिर निस्सन्देह वह ही अनुभव किया जाना चाहिये।

19. कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव॥

कम्मे	(कम्म) 7/1	कर्म में
णोकम्मम्हि	(णोकम्म) 7/1	नो कर्म में
य	अव्यय	और
अहमिदि	[(अहं)+(इदि)]	
	अहं (अम्ह) 1/1 स	मैं
	इदि (अ) =	शब्दस्वरूपद्योतक
अहकं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
च	अव्यय	तथा
*कम्म	(कम्म) 1/1	कर्म
णोकम्मं	(णोकम्म) 1/1	नो कर्म
जा	अव्यय	जब तक
एसा	(एता) 1/1 सवि	ऐसी
खलु	अव्यय	निस्सन्देह
बुद्धी	(बुद्धि) 1/1	बुद्धि
अप्पडिबुद्धो	(अप्पडिबुद्ध) 1/1 वि	अज्ञानी
हवदि	(हव) व 3/1 अक	होता है
ताव	अव्यय	तब तक

अन्वय- अहमिदि कम्मे य णोकम्मम्हि च अहकं कम्म णोकम्मं जा एसा बुद्धी ताव खलु अप्पडिबुद्धो हवदि।

अर्थ- मैं कर्म (द्रव्यकर्म व भावकर्म) में (हूँ) और नो कर्म (शरीरादि बाह्य वस्तु) में (हूँ) तथा (तादात्म्य रूप से) मैं कर्म (और) नो कर्म (ही) (हूँ) जब तक ऐसी बुद्धि (रहती है) तब तक (वह) (व्यक्ति) निस्सन्देह अज्ञानी (मूर्च्छित) होता है।

---

* प्राकृत में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है।

(पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

20. अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा।।

अहमेदं	[(अहं)+(एदं)]	
	अहं (अम्ह) 1/1 स	मैं
	एदं (एद) 1/1 सवि	यह
एदमहं	[(एदं)+(अहं)]	
	एदं (एद) 1/1 सवि	यह
	अहं (अम्ह) 1/1 स	मैं
अहमेदस्स	[(अहं)+(एदस्स)]	
	अहं (अम्ह) 1/1 स	मैं
	एदस्स (एद) 6/1 सवि	इसका
म्हि	(अस) व 1/1 अक	हूँ
अत्थि	(अस) व 3/1 अक	है
मम	(अम्ह) 6/1 स	मेरा
एदं	(एद) 1/1 सवि	यह
अण्णं	(अण्ण) 1/1 वि	अन्य
जं	(ज) 1/1 सवि	जो
परदव्वं	[(पर) वि-(दव्व) 1/1]	पर द्रव्य
सच्चित्ताचित्तमिस्सं	[(सच्चित्त)+(अचित्तमिस्सं)]	
	[(सच्चित्त) वि-(अचित्त) वि-	चेतन, अचेतन,
	(मिस्स) 1/1 वि]	मिश्र
वा	अव्यय	और

अन्वय- जं अण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा परदव्वं अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि एदं मम अत्थि।

अर्थ- जो (स्वयं से) अन्य (कोई) चेतन (कुटुम्बी जन), अचेतन (धन-धान्यादि) और मिश्र (संबंधित ग्राम, नगर आदि) पर द्रव्य (है), (उसके विषय में यदि कोई व्यक्ति सोचे कि) (तादात्मयरूप से) मैं यह (पर द्रव्य) (हूँ) (या) यह (पर द्रव्य) मैं (हूँ) मैं इसका हूँ (या) यह मेरा है.....

21. आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि।
होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि।।

आसि	(अस) भू 3/1 अक	था
मम	(अम्ह) 6/1 स	मेरा
पुव्वमेदं	[(पुव्वं)+(एदं)]	
	पुव्वं (अ) = पहले	पहले
	एदं (एद) 1/1 सवि	यह
एदस्स	(एद) 6/1 सवि	इसका
अहं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
पि	अव्यय	भी
आसि	(अस) भू 1/1 अक	था
पुव्वं	अव्यय	पहले
हि	अव्यय	पादपूरक
होहिदि	(हो) भवि 3/1 अक	होगा
पुणो	अव्यय	फिर
ममेदं	[(मम)+(एदं)]	
	मम (अम्ह) 6/1 स	मेरा
	एदं (एद) 1/1 सवि	यह
एदस्स	(एद) 6/1 सवि	इसका
अहं	(अम्ह) 1/1 स	मैं
पि	अव्यय	भी
होस्सामि	(हो) भवि 1/1 अक	होऊँगा

अन्वय- पुव्वमेदं मम आसि पुव्वं हि अहं पि एदस्स आसि पुणो ममेदं होहिदि अहं पि एदस्स होस्सामि।

अर्थ- पहले यह मेरा था (या) पहले मैं भी इसका था। फिर यह मेरा होगा (तथा) मैं भी इसका होऊँगा।

22. एयं तु असब्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो।।

एयं	(एत→एय) 2/1 सवि	इस
तु	अव्यय	पादपूरक
असब्भूदं	(अ-सब्भूद) 2/1 वि	अविद्यमान
आदवियप्पं	[(आद)-(वियप्प)2/1]	विचार को मन में
करेदि	(कर) व 3/1 सक	लाता है
संमूढो	(सं-मूढ) 1/1 वि	अज्ञानी
भूदत्थं	(भूदत्थ) 2/1 वि	आत्मा में स्थित दृष्टि को
जाणंतो	(जाण) वकृ 1/1	जानता हुआ
ण	अव्यय	न
करेदि	(कर) व 3/1 सक	स्वीकार करता है/ मानता है
दु	अव्यय	और
तं	(त) 2/1 सवि	उसको
असंमूढो	(अ-सं-मूढ) 1/1 वि	ज्ञानी

अन्वय- एयं तु असब्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो दु भूदत्थं जाणंतो तं ण करेदि असंमूढो।

अर्थ- (जो) (पूर्णतया) इस अविद्यमान (उक्त तादात्म्य के) विचार को मन में लाता है, (वह) अज्ञानी (है) और (जो) आत्मा में स्थित दृष्टि को अर्थात् स्व और पर के भेद को जानता हुआ उस (उक्त तादात्म्य) को न स्वीकार करता है/न मानता है (वह) ज्ञानी है।

23. **अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं।**
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो।।

अण्णाणमोहिदमदी	[(अण्णाण) वि-(मोहिद)भूकृ-(मदि) 1/1 वि]	अज्ञान से मूर्च्छित हुई बुद्धिवाला
मज्झमिणं	[(मज्झं)+(इणं)]	
	मज्झं (अम्ह) 6/1 स	मेरा
	इणं (इम) 2/1 सवि	इस
भणदि	(भण) व 3/1 सक	कहता है
पोग्गलं	(पोग्गल) 2/1	पुद्गल
दव्वं	(दव्व) 2/1	द्रव्य को
बद्धमबद्धं	[(बद्धं)+(अबद्धं)]	
	बद्धं (बद्ध) भूकृ 2/1 अनि	बद्ध
	अबद्धं (अ-बद्ध) भूकृ 2/1 अनि	अबद्ध
च	अव्यय	पादपूरक
तहा	अव्यय	तथा
जीवो	(जीव) 1/1	जीव
बहुभावसंजुत्तो	[(बहु) वि-(भाव)-(संजुत्त) भूकृ 1/1 अनि]	अनेक प्रकार के भावों से युक्त

अन्वय- अण्णाणमोहिदमदी बहुभावसंजुत्तो जीवो बद्धं तहा अबद्धं च पोग्गलं दव्वं मज्झमिणं भणदि।

अर्थ-(जो) (जीव) अज्ञान से मूर्च्छित हुई बुद्धिवाला (है) तथा अनेक प्रकार के (राग, द्वेष, मोह आदि) भावों से युक्त (है) (वह) जीव (ही) इस बद्ध (अपने से जुड़ी हुई) (देह) को तथा अबद्ध (देह से भिन्न) पुद्गल द्रव्य को मेरा कहता है।

24. सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं।।

सव्वण्हुणाणदिट्ठो	[(सव्वण्हु)-(णाण)-(दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि]	सर्वज्ञ के ज्ञान में देखा गया
जीवो	(जीव) 1/1	जीव
उवओगलक्खणो	[(उवओग)-(लक्खण) 1/1 वि]	उपयोगलक्षणवाला
णिच्चं	अव्यय	सदा
कह	अव्यय	क्यों/कैसे
सो	(त) 1/1 सवि	वह
पोग्गलदव्वीभूदो	[(पोग्गल)+(दव्व)+(ई)+(भूदो)]	
	[(पोग्गल)-(दव्व)-(भूद) भूकृ 1/1 अनि]	पुद्गल द्रव्यरूप हुआ
	ई (अ)= पादपूरक	पादपूरक
जं	अव्यय	चूँकि
भणसि	(भण) व 2/1 सक	कहता है
मज्झमिणं	[(मज्झं)+(इणं)]	
	मज्झं (अम्ह) 6/1 स	मेरा
	इणं (इम) 2/1 सवि	इसको

अन्वय- जं मज्झमिणं भणसि सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो णिच्चं उवओगलक्खणो सो पोग्गलदव्वीभूदो कह।

अर्थ- चूँकि (तू) इसको (पुद्गल द्रव्य को) मेरा कहता है, (किन्तु) सर्वज्ञ के ज्ञान में देखा गया (है) (कि) जीव सदा उपयोगलक्षणवाला (होता है)। (तो प्रश्न है) वह (जीव) पुद्गल द्रव्यरूप क्यों/कैसे हुआ?

25. जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं।
तो सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं।।

जदि	अव्यय	यदि
सो	(त) 1/1 सवि	वह
पोग्गलदव्वीभूदो	[(पोग्गल)+(दव्व)+(ई)+(भूदो)]	
	[(पोग्गल)-(दव्व)-(भूद)	पुद्गल द्रव्यरूप
	भूकृ 1/1 अनि]	में घटित
	ई (अ)= पादपूरक	पादपूरक
जीवत्तमागदं	[(जीवत्तं)+(आगदं)]	
	जीवत्तं (जीवत्त) 2/1→7/1	जीवत्व में घटित
	आगदं (आगद) भूकृ 1/1 अनि	
इदरं	(इदर) 2/1→7/1 वि	इसके विपरीत
तो	अव्यय	तो
सक्को	(सक्क) 1/1 वि	समर्थ
वत्तुं	(वत्तु) हेकृ अनि	कहने के लिए
जे	अव्यय	कि
मज्झमिणं	[(मज्झं)+(इणं)]	
	मज्झं (अम्ह) 6/1 स	मेरा
	इणं (इम) 1/1 सवि	यह
पोग्गलं	(पोग्गल) 1/1	पुद्गल
दव्वं	(दव्व) 1/1	द्रव्य

अन्वय- जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो इदरं जीवत्तमागदं तो वत्तुं सक्को जे पोग्गलं दव्वं मज्झमिणं।

अर्थ- यदि वह (जीव द्रव्य) पुद्गल द्रव्यरूप में घटित (हो) (या) इसके विपरीत (पुद्गल द्रव्य) जीवत्व में घटित (हो) तो (ही)(तुम) (यह) कहने के लिए समर्थ (हो) कि (यह) पुद्गल द्रव्य मेरा (है)।

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरणः 3-137)

26. जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो।।

जदि	अव्यय	यदि
जीवो	(जीव) 1/1	जीव
ण	अव्यय	नहीं है
सरीरं	(सरीर) 1/1	शरीर
तित्थयरायरियसंथुदी	[(तित्थयर)-(आयरिय)-(संथुदि) 1/1]	तीर्थंकरों और आचार्यों की स्तुति
चेव	अव्यय	ही
सव्वा	(सव्वा) 1/1 सवि	सब
वि	अव्यय	ही
हवदि	(हव) व 3/1 अक	है
मिच्छा	अव्यय	मिथ्या
तेण	अव्यय	इसलिए
दु	अव्यय	तो
आदा	(आद) 1/1	आत्मा
हवदि	(हव) व 3/1 अक	है
देहो	(देह) 1/1	देह

अन्वय-जदि जीवो ण सरीरं दु तित्थयरायरियसंथुदी सव्वा वि मिच्छा हवदि तेण देहो चेव आदा हवदि।

अर्थ- यदि (तुम कहते हो कि) जीव शरीर नहीं है तो तीर्थंकरों और आचार्यों की (शरीर रूप से की गई) स्तुति सब ही मिथ्या है (मिथ्या हो जावेगी)। इसलिए (मान लेना चाहिए कि) देह ही आत्मा है। (इस प्रकार मानने से तीर्थंकरों और आचार्यों की देहरूप में की गई स्तुति मिथ्या होने से बच जायेगी)।

27. ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो॥

ववहारणओ	(ववहारणअ) 1/1	व्यवहारनय
भासदि	(भास) व 3/1 सक	कहता है
जीवो	(जीव) 1/1	जीव
देहो	(देह) 1/1	देह
य	अव्यय	और
हवदि	(हव) व 3/1 अक	है
खलु	अव्यय	ही
एक्को	(एक्क) 1/1 वि	एक
ण	अव्यय	नहीं
दु	अव्यय	परन्तु
णिच्छयस्स	(णिच्छय) 6/1	निश्चयनय के
जीवो	(जीव) 1/1	जीव
देहो	(देह) 1/1	देह
य	अव्यय	और
कदा वि	अव्यय	कभी
एक्कट्ठो	[(एक्क)+(अट्ठो)]	
	[(एक्क) वि-(अट्ठ) 1/1]	एक पदार्थ

अन्वय- ववहारणओ भासदि जीवो य देहो एक्को खलु हवदि दु णिच्छयस्स जीवो य देहो कदा वि एक्कट्ठो ण।

अर्थ- व्यवहारनय (इस बात को) कहता है (कि) जीव और देह एक (समान) ही हैं, परन्तु निश्चयनय के (अनुसार) (तो) जीव और देह कभी एक (समान) पदार्थ नहीं (होते हैं)।

28. इणमण्णं जीवादो देहं पोग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं।।

इणमण्णं	[(इणं)+(अण्णं)]	
	इणं (इम) 2/1 सवि	इस
	अण्णं (अण्ण) 2/1 वि	भिन्न
जीवादो	(जीव) 5/1	जीव से
देहं	(देह) 2/1	देह
पोग्गलमयं	(पोग्लमय) 2/1 वि	पुद्गलमय
थुणित्तु	(थुण) संकृ	स्तुति करके
मुणी	(मुणि) 1/1	मुनि
मण्णदि	(मण्ण) व 3/1 सक	मानता है
हु	अव्यय	ऐसा
संथुदो	(संथुद) भूकृ 1/1 अनि	स्तुति किए गए
वंदिदो	(वंद) भूकृ 1/1	वंदना किए गए
मए	(अम्ह) 3/1 स	मेरे द्वारा
केवली	(केवलि) 1/1 वि	केवली
भयवं	(भयव) 1/1	भगवान

अन्वय- जीवादो इणमण्णं पोग्गलमयं देहं थुणित्तु मुणी हु मण्णदि मए केवली भयवं संथुदो वंदिदो।

अर्थ- जीव से भिन्न इस पुद्गलमय देह की स्तुति करके मुनि ऐसा मानता है (कि) मेरे द्वारा केवली भगवान स्तुति किए गए (व) वंदना किए गए (हैं)।

29. तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो।
केवलिगुणो[1] थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि।।

तं	(त) 1/1 सवि	वह
णिच्छये[2]	(णिच्छय) 7/1→5/1	निश्चयदृष्टि से
ण	अव्यय	नहीं
जुज्जदि[3]	(जुज्जदि) व कर्म 3/1 अनि	उपयुक्त माना जाता है
ण	अव्यय	नहीं
सरीरगुणा	[(सरीर)-(गुण) 1/2]	शरीर के गुण
हि	अव्यय	क्योंकि
होंति	(हो) व 3/2 अक	होते हैं
केवलिणो	(केवलि) 6/1	केवली के
केवलिगुणो (केवलिगुणे)	[(केवलि)-(गुण) 2/2]	केवली के गुणों की
थुणदि	(थुण) व 3/1 सक	स्तुति करता है
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
सो	(त) 1/1 सवि	वह
तच्चं	(तच्च) 2/1→7/1	यथार्थ में
केवलिं	(केवलि) 2/1	केवली
थुणदि	(थुण) व 3/1 सक	स्तुति करता है

अन्वय- तं णिच्छये ण जुज्जदि हि केवलिणो सरीरगुणा ण होंति जो केवलिगुणो थुणदि सो तच्चं केवलिं थुणदि।

अर्थ- वह (केवली के पुद्गलमय देह का) (स्तवन) निश्चयदृष्टि (आत्म-दृष्टि) से उपयुक्त नहीं माना जाता है, क्योंकि केवली के शरीर के गुण (केवली के अपने आत्मा के गुण) नहीं होते हैं। जो केवली के (आत्म) गुणों की स्तुति करता है, वह यथार्थ में केवली की स्तुति करता है।

---

1. यहाँ 'केवलिगुणो' के स्थान पर 'केवलिगुणे' होना चाहिये।
2. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम -प्राकृत-व्याकरणः 3-136)
3. जुज्जदि (कर्मवाच्य अनि) का प्रयोग सप्तमी या षष्ठी के साथ 'उपयुक्त माना जाना' अर्थ में होता है। (आप्टेः संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश)

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

30. णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति।।

णयरम्मि[1]	(णयर) 7/1	नगर का
वण्णिदे[1]	(वण्णिद) भूकृ 7/1 अनि	वर्णन करने पर
जह	अव्यय	जैसे
ण	अव्यय	नहीं
वि	अव्यय	भी
रण्णो	(राय) 6/1	राजा का
वण्णणा	(वण्णण) 1/2	वर्णन
कदा	(कद) भूकृ 1/2 अनि	किया हुआ
होदि	(हो) व 3/1 अक	होता है
देहगुणे[1]	[(देह)-(गुण) 7/1]	देह के गुणों की
थुव्वंते[1]	(थुव्वंते) वकृ कर्म 7/1 अनि	स्तुति करने पर
ण	अव्यय	नहीं
केवलिगुणा	[(केवलि)-(गुण) 1/2]	केवली के गुण
थुदा	(थुद) भूकृ 1/2 अनि	स्तुति किये हुए
होंति	(हो) व 3/2 अक	होते हैं

अन्वय- जह णयरम्मि वण्णिदे वि रण्णो वण्णणा कदा ण होदि देहगुणे थुव्वंते केवलिगुणा थुदा ण होंति ।

अर्थ- जैसे (किसी के द्वारा) नगर का वर्णन करने पर भी राजा का वर्णन किया हुआ नहीं होता है, (वैसे ही) देह के गुणों की स्तुति करने पर (भी) केवली के गुण स्तुति किये हुए नहीं होते हैं।

---

1. जब एक कार्य के हो जाने पर दूसरा कार्य होता है तो हो चुके कार्य में सप्तमी का प्रयोग होता है। हो चुके कार्य के वाक्य में सकर्मक क्रिया का प्रयोग होने पर वाक्य कर्मवाच्य में होगा। अतः कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया और कर्म और कृदन्त में सप्तमी होती है। यहाँ कर्ता (केण) लुप्त है। (प्राकृत-व्याकरणः पृष्ठ 49-50)

31. जो इन्दिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू।।

जो	(ज) 1/1 सवि	जो
इन्दिये	(इन्दिय) 2/2	इन्द्रियों को
जिणित्ता	(जिण) संकृ	जीतकर
णाणसहावाधियं	[(णाणसहाव)+(अधियं)]	
	[(णाण)-(सहाव)-(अधिय) 2/1 वि]	ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण
मुणदि	(मुण) व 3/1 सक	अनुभव करता है
आदं	(आद) 2/1	आत्मा का
तं	(त) 2/1 सवि	उसको
खलु	अव्यय	ही
जिदिंदियं	[(जिद)+(इंदियं)]	
	[(जिद) भूकृ अनि-(इंदिय) 2/1 वि]	जीती हुई इन्द्रियोंवाला
ते	(त) 1/2 सवि	वे
भणंति	(भण) व 3/2 सक	कहते हैं
जे	(ज) 1/2 सवि	जो
णिच्छिदा	(णिच्छिद) भूकृ 1/2 अनि	निर्धारण किये हुए
साहू	(साहु) 1/2	साधु

अन्वय- जो इन्दिये जिणित्ता णाणसहावाधियं आदं मुणदि तं खलु ते जे णिच्छिदा साहू जिदिंदियं भणंति।

अर्थ- जो इन्द्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण आत्मा का अनुभव करता है, उसको ही, वे जो (आत्मा का) निर्धारण किये हुए अर्थात् आत्मा का अनुभव किये हुए साधु (हैं), जीती हुई इन्द्रियोंवाला कहते हैं।

32. जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया बेंति।।

जो	(ज) 1/1 सवि	जो
मोहं	(मोह) 2/1	मोह को
तु	अव्यय	पादपूरक
जिणित्ता	(जिण) संकृ	जीतकर
णाणसहावाधियं	[(णाणसहाव)+(अधियं)]	
	[(णाण)-(सहाव)-(अधिय) 2/1 वि]	ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण
मुणदि	(मुण) व 3/1 सक	अनुभव करता है
आदं	(आद) 2/1	आत्मा
तं	(त) 2/1 सवि	उसको
जिदमोहं	[(जिद) भूकृ अनि-(मोह) 2/1 वि]	जीते हुए मोहवाला
साहुं	(साहु) 2/1	साधु को
परमट्ठवियाणया	[(परमअट्ठ)-(वियाणय) 1/2 वि]	परमार्थ को जाननेवाले
बेंति	(बेंति) व 3/2 सक अनि	कहते हैं

अन्वय- जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं आदं मुणदि तं साहुं परमट्ठवियाणया जिदमोहं बेंति।

अर्थ- जो (साधु) मोह को जीतकर ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण आत्मा का अनुभव करता है, उस साधु को, परमार्थ के जाननेवाले (शुद्धात्मा का अनुभव करनेवाले) (आचार्य), जीते हुए मोहवाला (पुद्गलात्मक मोहनीय कर्म को दबानेवाला) कहते हैं।

33. जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं।।

जिदमोहस्स	[(जिद) भूक अनि-(मोह) 6/1 वि]	जीते हुए मोहवाला
दु	अव्यय	पादपूरक
जइया	अव्यय	जब
खीणो	(खीण) 1/1 वि	क्षीण
मोहो	(मोह) 1/1	मोह
हविज्ज	(हव) भवि 3/1 अक	होगा
साहुस्स	(साहु) 6/1	साधु का
तइया	अव्यय	तब
हु	अव्यय	निश्चय ही
खीणमोहो	[(खीण) वि-(मोह) 1/1]	नष्ट किये हुए मोहवाला
भण्णदि	(भण्णदि) व कर्म 3/1 अनि	कहा जाता है
सो	(त) 1/1 सवि	वह
णिच्छयविदूहिं	(णिच्छयविदु) 3/2 वि	आत्मस्थ ज्ञानियों द्वारा

अन्वय- जइया जिदमोहस्स दु साहुस्स मोहो खीणो हविज्ज तइया णिच्छयविदूहिं सो हु खीणमोहो भण्णदि।

अर्थ- जब जीते हुए मोहवाले साधु का मोह क्षीण होगा तब आत्मस्थ ज्ञानियों द्वारा वह (साधु) निश्चय ही नष्ट किये हुए मोहवाला (पुद्गलात्मक मोहनीय कर्म को नष्ट करनेवाला) कहा जाता है।

34. सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं।।

सव्वे	(सव्व) 2/2 सवि	समस्त
भावे	(भाव) 2/2	भावों को
जम्हा	अव्यय	चूँकि
पच्चक्खाई[1]	(पच्चक्खा) व 3/1 सक	त्याग देता है
परे त्ति	[(परे)+(इति)]	
	परे (पर) 2/2 वि	पर
	इति (अ) =	शब्दस्वरूपद्योतक
णादूणं	(णा) संकृ	जानकर
तम्हा	अव्यय	इसलिए
पच्चक्खाणं	(पच्चक्खाण) 1/1	प्रत्याख्यान
णाणं	(णाण) 1/1	ज्ञान
णियमा	(णियम) 5/1	नियम से
मुणेदव्वं	(मुण) विधिकृ 1/1	समझा जाना चाहिये

अन्वय- जम्हा सव्वे परे त्ति भावे णादूणं पच्चक्खाई तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं।

अर्थ- चूँकि (जो) समस्त पर भावों को जानकर त्याग देता है, इसलिए (उसका) प्रत्याख्यान (स्वसंवेदन) ज्ञान (ही) (है) (यह) नियम से समझा जाना चाहिये।

---

1. यहाँ छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'पच्चक्खाइ' के स्थान पर 'पच्चक्खाई' किया गया है।

35. जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुञ्चदे णाणी।।

जह	अव्यय	जैसे
णाम	अव्यय	पादपूरक
को	(क) 1/1 सवि	कोई
वि	अव्यय	भी
पुरिसो	(पुरिस) 1/1	मनुष्य
परदव्वमिणं ति	[(परदव्वं)+(इणं)+(इति)]	
	परदव्वं [(पर)वि-(दव्व)1/1]	पर वस्तु
	इणं (इम) 1/1 सवि	यह
	इति (अ) = इस प्रकार	इस प्रकार
जाणिदुं	(जाण) संकृ	जानकर
चयदि	(चय) व 3/1 सक	छोड़ देता है
तह	अव्यय	वैसे ही
सव्वे	(सव्व) 2/2 सवि	सभी
परभावे	[(पर) वि-(भाव) 2/2]	पर भावों को
णाऊण	(णा) संकृ	समझकर
विमुञ्चदे	(विमुञ्च) व 3/1 सक	त्याग देता है
णाणी	(णाणि) 1/1 वि	ज्ञानी

अन्वय- जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि तह णाणी सव्वे परभावे णाऊण विमुञ्चदे।

अर्थ- जैसे कोई भी मनुष्य, यह पर वस्तु (है) इस प्रकार जानकर (उसको) छोड़ देता है, वैसे ही ज्ञानी (मनुष्य) सभी पर भावों को समझकर (उनको) त्याग देता है।

36. णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति।।

णत्थि	अव्यय	नहीं है
मम	(अम्ह) 6/1 स	मेरे
को	(क) 1/1 सवि	कोई
वि	अव्यय	भी
मोहो	(मोह) 1/1	मोह
बुज्झदि	(बुज्झ) व 3/1 सक	समझता है
*उवओग	(उवओग) 1/1	उपयोग
एव	अव्यय	ही
अहमेक्को	[(अहं)+(एक्को)]	
	अहं (अम्ह) 1/1 स	मैं
	एक्को (एक्क) 1/1 वि	केवलमात्र
तं	(त) 2/1 सवि	उसको
मोहणिम्ममत्तं	[(मोह)-(णिम्ममत्त) 2/1]	मोह से निर्ममत्व
समयस्स	(समय) 6/1	आत्मा का
वियाणया	(वियाणय) 1/2 वि	अनुभव करनेवाले
बेंति	(बेंति) व 3/2 सक अनि	कहते हैं

अन्वय- अहमेक्को उवओग एव मम मोहो णत्थि को वि बुज्झदि तं समयस्स वियाणया मोहणिम्ममत्तं बेंति।

अर्थ- (चूँकि) मैं (जीवात्मा) केवलमात्र उपयोग (लक्षणवाला) ही (हूँ), (इसलिए) मेरे (किसी भी प्रकार का) मोह (परभाव) नहीं है। (जो) कोई भी (इस बात को) समझता है उसको आत्मा का अनुभव करनेवाले (आचार्य) (सम्पूर्ण) मोह से निर्ममत्व (हुआ) कहते हैं।

---

* प्राकृत में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है।
(पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

37. **णत्थि मम धम्म-आदी[1] बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।**
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति॥

णत्थि	अव्यय	नहीं है
मम	(अम्ह) 6/1 स	मेरे
धम्म-आदी	[(धम्म)-(आदि) 1/2]	धर्म द्रव्य (तथा) इसी प्रकार और भी
बुज्झदि	(बुज्झ) व 3/1 सक	समझता है
*उवओग	(उवओग) 1/1 वि	उपयोग (लक्षणवाला)
एव	अव्यय	ही
अहमेक्को	[(अहं)+(एक्को)]	
	अहं (अम्ह) 1/1 स	मैं
	एक्को (एक्क) 1/1 वि	केवलमात्र
तं	(त) 2/1 सवि	उसको
धम्मणिम्ममत्तं	[(धम्म)-(णिम्ममत्त) 2/1]	धर्म से निर्ममत्व
समयस्स	(समय) 6/1	आत्मा का
वियाणया	(वियाणय) 1/2 वि	अनुभव करनेवाले
बेंति	(बेंति) व 3/2 सक अनि	कहते हैं

अन्वय- अहमेक्को उवओग एव धम्म आदी मम णत्थि बुज्झदि तं समयस्स वियाणया धम्मणिम्ममत्तं बेंति।

अर्थ- (चूँकि) मैं (जीवात्मा) केवलमात्र उपयोग (लक्षणवाला) ही (हूँ), (इसलिए) धर्म द्रव्य (तथा) इसी प्रकार और भी (द्रव्य) मेरे नहीं है। (जो) (कोई) (इस बात को) समझता है उसको आत्मा का अनुभव करनेवाले (आचार्य) धर्म (आदि) (द्रव्यों) से निर्ममत्व (हुआ) कहते हैं।

---

1. यहाँ 'धम्म आदी' के स्थान पर 'धम्म-आदी' होना चाहिये।

* प्राकृत में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

38. अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि।।

अहमेक्को	[(अहं)+(एक्को)]	
	अहं (अम्ह) 1/1 स	मैं
	एक्को (एक्क) 1/1 वि	अनुपम
खलु	अव्यय	निश्चय ही
सुद्धो	(सुद्ध) 1/1 वि	शुद्ध
दंसणणाणमइओ	[(दंसण)-(णाणमइअ)1/1वि]	दर्शन-ज्ञानमय
सदारूवी	[(सदा)+(अरूवी)]	
	सदा (अ) =	सदा
	अरूवी (अरूवि) 1/1 वि	अरूपी
ण	अव्यय	नहीं
वि	अव्यय	इसलिए
अत्थि	अव्यय	है
मज्झ	(अम्ह) 6/1 स	मेरी
किंचि	अव्यय	कुछ
वि	अव्यय	भी
अण्णं	(अण्ण) 1/1 सवि	दूसरी
परमाणुमेत्तं	[(परमाणु)-(मेत्त) 1/1]	परमाणु-मात्र
पि	अव्यय	भी

अन्वय- अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी वि अत्थि किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि मज्झ ण।

अर्थ- मैं निश्चय ही शुद्ध (हूँ), (इसलिए) अनुपम (हूँ), दर्शन-ज्ञानमय (हूँ), सदा अरूपी (अमूर्तिक/अतीन्द्रिय) (हूँ), इसलिए कुछ भी दूसरी (वस्तु) परमाणु-मात्र भी मेरी नहीं (है)।

जीव-अजीव अधिकार

(गाथा 39 से गाथा 68 तक)

39. अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूवेंति।।

अप्पाणमयाणंता	[(अप्पाणं)+(अयाणंता)]	
	अप्पाणं (अप्पाण) 2/1	आत्मा को
	अयाणंता (अ-याण) वकृ 1/2	न जानते हुए
मूढा	(मूढ) 1/2 वि	अज्ञानी
दु	अव्यय	तो
परप्पवादिणो	[(पर)+(अप्पवादिणो)]	
	[(पर) वि-(अप्प)-(वादि) 1/2 वि]	पर (द्रव्य) को आत्मा बतानेवाला
केई	अव्यय	कई
जीवं	(जीव) 2/1	जीव
अज्झवसाणं[1]	(अज्झवसाण) 2/1	अध्यवसान को
कम्मं	(कम्म) 2/1	कर्म को
च	अव्यय	पादपूरक
तहा	अव्यय	और
परूवेंति	(परूव) व 3/2 सक	प्रतिपादित करते हैं

अन्वय- अप्पाणमयाणंता परप्पवादिणो केई मूढा दु अज्झवसाणं च तहा कम्मं जीवं परूवेंति।

अर्थ- आत्मा को न जानते हुए पर (द्रव्य) को आत्मा बतानेवाले कई अज्ञानी तो (रागादि) अध्यवसान (परिणाम-समूह) को और (जन्म-मरण के आधार) कर्म (शरीर) को जीव प्रतिपादित करते हैं।

---

1. अज्झवसाण = परिणाम (देखें: समयसार, गाथा 271)

40. अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं।
मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति।।

अवरे	(अवर) 1/2 वि	अन्य
अज्झवसाणेसु	(अज्झवसाण) 7/2	अध्यवसानों में
तिव्वमंदाणुभागगं	[(तिव्वमंद)+(अणुभागगं)]	
	[(तिव्व) वि-(मंद) वि-	तीव्र और मंद
	(अणुभागग) 2/1 वि]	(प्रभावोत्पादक) शक्ति
	'ग' स्वार्थिक	को
जीवं	(जीव) 2/1	जीव
मण्णंति	(मण्ण) व 3/2 सक	मानते हैं
तहा	अव्यय	तथा
अवरे	(अवर) 1/2 वि	अन्य
णोकम्मं	(णोकम्म) 1/1	नोकर्म
चावि	अव्यय	ही
जीवो त्ति	[(जीवो)+(इति)]	
	जीवो (जीव) 1/1	जीव
	इति (अ) = ऐसा	ऐसा

अन्वय- अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति।

अर्थ- अन्य (अज्ञानी) (रागादि) अध्यवसानों (परिणामों) में तीव्र और मन्द (प्रभावोत्पादक) शक्ति को जीव मानते हैं तथा अन्य ऐसा (मानते हैं) (कि) नोकर्म (शरीरादि) ही जीव (है)।

41. कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छंति।
तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो।।

कम्मस्सुदयं	[(कम्मस्स)+(उदयं)]	
	कम्मस्स (कम्म) 6/1	कर्म के
	उदयं (उदय) 2/1	उदय को
जीवं	(जीव) 2/1	जीव
अवरे	(अवर) 1/2 वि	अन्य
कम्माणुभागमिच्छंति	[(कम्म)+(अणुभागं)+(इच्छंति)]	
	[(कम्म)-(अणुभाग) 2/1]	कर्मों की फलदान शक्ति को
	इच्छंति (इच्छ) व 3/2 सक	स्वीकार करते हैं
तिव्वत्तणमंदत्तण-गुणेहिं[1]	[(तिव्वत्तण)-(मंदत्तण)-(गुण) 3/2]	तीव्रता और मंदता रूप परिणाम के कारण
जो	(ज) 1/1 सवि	जो
सो	(त) 1/1 सवि	वह
हवदि	(हव) व 3/1 अक	है
जीवो	(जीव) 1/1	जीव

अन्वय- अवरे कम्मस्सुदयं जीवं तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं कम्माणुभाग-मिच्छंति जो सो जीवो हवदि।

अर्थ- अन्य (शुभ-अशुभ भावों से उत्पन्न) (पुण्य-पाप रूप) कर्म के उदय को जीव (मानते हैं)। (अन्य) तीव्रता और मन्दतारूप परिणाम के कारण कर्मों की (साता-असाता रूप) फलदान शक्ति को स्वीकार करते हैं (इसलिए) जो (कर्मो की फलदान शक्ति है), वह जीव है।

---

1. कारण व्यक्त करनेवाले शब्दों में तृतीया होती है।
(प्राकृत-व्याकरणः पृष्ठ 36)

42. जीवो कम्मं उहयं दोण्णि वि खलु केइ जीवमिच्छंति।
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति।।

जीवो	(जीव) 1/1	जीव
कम्मं	(कम्म) 1/1	कर्म
उहयं	(उहय) 1/1 सवि	दो
दोण्णि वि	(दो वि) 2/2 वि	दोनों को
खलु	अव्यय	ही
केइ	अव्यय	कई
जीवमिच्छंति	[(जीवं)+(इच्छंति)]	
	जीवं (जीव) 2/1	जीव
	इच्छंति (इच्छ) व 3/2 सक	स्वीकार करते हैं
अवरे	(अवर) 1/2 वि	अन्य
संजोगेण	(संजोग) 3/1	संयोग से
दु	अव्यय	ही
कम्माणं	(कम्म) 6/2	कर्मों के
जीवमिच्छंति	[(जीवं)+(इच्छंति)]	
	जीवं (जीव) 2/1	जीव को
	इच्छंति (इच्छ) व 3/2 सक	स्वीकार करते हैं

अन्वय- जीवो कम्मं उहयं दोण्णि वि खलु केइ जीवमिच्छंति अवरे कम्माणं संजोगेण दु जीवमिच्छंति।

अर्थ- जीव और कर्म दो (हैं) (उन मिले हुए) दोनों को कई (अज्ञानी) 'जीव' स्वीकार करते हैं। अन्य (अज्ञानी) जीव को कर्मों के संयोग से ही (उत्पन्न) स्वीकार करते हैं।

43. एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।
ते ण परमट्ठवादी णिच्छयवादीहिं णिद्दिट्ठा।।

एवंविहा	(एवंविह) 1/2 वि	ऐसे
बहुविहा	(बहुविह) 1/2 वि	अनेक प्रकार के
परमप्पाणं	[(परं)+(अप्पाणं)]	
	परं (पर) 2/1 वि	पर को
	अप्पाणं (अप्पाण) 2/1	आत्मा
वदंति	(वद) व 3/2 सक	कहते हैं
दुम्मेहा	(दुम्मेह) 1/2 वि	अज्ञानी
ते	(त) 1/2 सवि	वे
ण	अव्यय	नहीं
परमट्ठवादी	[(परमट्ठ)-(वादि) 1/2 वि]	परमार्थवादी
णिच्छयवादीहिं	(णिच्छयवादि) 3/2 वि	निश्चयवादियों द्वारा
णिद्दिट्ठा	(णिद्दिट्ठ) भूकृ 1/2 अनि	कहे गए

अन्वय- एवंविहा बहुविहा दुम्मेहा परमप्पाणं वदंति णिच्छयवादीहिं ते परमट्ठवादी ण णिद्दिट्ठा।

अर्थ- ऐसे अनेक प्रकार के अज्ञानी (व्यक्ति) पर को आत्मा कहते हैं। (किन्तु) निश्चयवादियों (आत्मदृष्टिवालों के) द्वारा वे परमार्थवादी (अध्यात्मवादी) नहीं कहे गए (हैं)।

44. एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा।
केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चंति।।

एदे	(एद) 1/2 सवि	ये
सव्वे	(सव्व) 1/2 सवि	सभी
भावा	(भाव) 1/2	भाव
पोग्गलदव्वपरिणाम-	[(पोग्गल)-(दव्व)-	पुद्गलद्रव्य के
णिप्पण्णा	(परिणाम)-(णिप्पण्ण)	परिणमन से उत्पन्न
	भूकृ 1/2 अनि]	
केवलिजिणेहिं	(केवलिजिण) 3/2	अरहंत द्वारा
भणिया	(भण) भूकृ 1/2	कहे गए
कह	अव्यय	कैसे
ते	(त) 1/2 सवि	वे
जीवो त्ति	[(जीवो)+(इति)]	
	जीवो (जीव) 1/1	जीव
	इति (अ) = इस प्रकार	इस प्रकार
वुच्चंति	(वुच्चंति) व कर्म 3/2 अनि	कहे जाते हैं

अन्वय- केवलिजिणेहिं एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा भणिया ते जीवो त्ति कह वुच्चंति।

अर्थ- (जब) अरहंत द्वारा (पूर्व कथित) ये सभी (रागादि) भाव (कर्म)-पुद्गलद्रव्य के परिणमन से उत्पन्न कहे गए (हैं) (तो) वे (सभी भाव) जीव (हैं) इस प्रकार कैसे कहे जाते हैं/कहे जा सकते हैं?

45. अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पोग्गलमयं जिणा बेंति।
जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स॥

अट्ठविहं पि	[(अट्ठविहं)+(अपि)]	
	अट्ठविहं (अट्ठविह) 2/1 वि	आठ प्रकार के
	अपि[1] (अ) =	पादपूरक
य	अव्यय	पादपूरक
कम्मं	(कम्म) 2/1	कर्म को
सव्वं	(सव्व) 2/1 सवि	समस्त
पोग्गलमयं	(पोग्गलमय) 2/1 वि	पुद्गलमय
जिणा	(जिण) 1/2	जिन
बेंति	(बेंति) व 3/2 सक अनि	कहते हैं
जस्स	(ज) 6/1 सवि	जिसका
फलं	(फल) 1/1	फल
तं	(त) 2/1 सवि	उस
वुच्चदि	(वुच्चदि) व कर्म 3/1 अनि	कहा जाता है
दुक्खं ति	[(दुक्खं)+(इति)]	
	दुक्खं (दुक्ख) 1/1	दुख
	इति (अ) =	शब्दस्वरूपद्योतक
विपच्चमाणस्स	(विपच्चमाण) वकृ 6/1	उदय में आता हुआ

अन्वय- विपच्चमाणस्स जस्स फलं दुक्खं ति वुच्चदि तं अट्ठविहं सव्वं कम्मं पि य जिणा पोग्गलमयं बेंति।

अर्थ- उदय में आता हुआ (जो भी कर्म है) जिसका फल (आकुलता रूप) दुख कहा जाता है, उस आठ प्रकार के समस्त कर्म को जिन पुद्गलमय कहते हैं।

---

1. आप्टेः संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

46. **ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।**
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा।।

ववहारस्स	(ववहार) 6/1	व्यवहारनय का
दरीसणमुवएसो	[(दरीसणं)+(उवएसो)]	
	दरीसणं (दरीसण) 1/1	कथन
	उवएसो (उवएस) 1/1	उपदेश
वण्णिदो	(वण्ण) भूकृ 1/1	प्रतिपादित
जिणवरेहिं	(जिणवर) 3/2	जिनेन्द्रदेव द्वारा
जीवा	(जीव) 1/2	जीव
एदे	(एद) 1/2 सवि	ये
सव्वे	(सव्व) 1/2 सवि	सभी
अज्झवसाणादओ	[(अज्झवसाण)+(आदओ)]	
	[(अज्झवसाण)-(आदि) 1/2]	अध्यवसान वगैरह
भावा	(भाव) 1/2	भाव

अन्वय- जिणवरेहिं उवएसो वण्णिदो एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा जीवा ववहारस्स दरीसणं।

अर्थ- जिनेन्द्रदेव द्वारा (जो) उपदेश प्रतिपादित (है) (उसके अनुसार) अध्यवसान वगैरह (राग वगैरह) ये सभी भाव जीव (हैं)- (यह) व्यवहारनय का कथन है।

47. राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया॥

राया	(राय) 1/1	राजा
हु	अव्यय	ही
णिग्गदो त्ति	[(णिग्गदो)+(इति)]	
	णिग्गदो (णिग्गद)	निकला
	भूकृ 1/1 अनि	
	इति (अ) =	शब्दस्वरूपद्योतक
य	अव्यय	पादपूरक
एसो	(एत) 1/1 सवि	यह
बलसमुदयस्स	[(बल)-(समुदय) 4/1]	सेना के समूह के लिए
आदेसो	(आदेस) 1/1	कहना
ववहारेण	(ववहार) 3/1	व्यवहार से
दु	अव्यय	कि
उच्चदि	(उच्चदि) व कर्म 3/1 अनि	कहा जाता है
तत्थेक्को	[(तत्थ)+(एक्को)]	
	तत्थ (अ) = वहाँ	वहाँ
	एक्को (एक्क) 1/1 वि	एक
णिग्गदो	(णिग्गद) भूकृ 1/1 अनि	निकला हुआ
राया	(राय) 1/1	राजा

अन्वय- बलसमुदयस्स एसो आदेसो दु राया णिग्गदो त्ति य ववहारेण उच्चदि तत्थ णिग्गदो राया एक्को हु।

अर्थ- (बाहर निकले हुए) सेना के समूह के लिए यह कहना कि राजा (बाहर) निकला है- व्यवहार (बाह्यदृष्टि) से कहा जाता है, (किन्तु) वहाँ (तो) (वास्तव में) निकला हुआ राजा एक ही (होता है)।

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

48. एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाणं।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो।।

एमेव	अव्यय	इसी प्रकार
य	अव्यय	पादपूरक
ववहारो	(ववहार) 1/1	व्यवहार
अज्झवसाणादि	[(अज्झवसाण)+(आदि)]	
	[(अज्झवसाण)-(आदि)[1]1/2]	अध्यवसान वगैरह
अण्णभावाणं	[(अण्ण) वि-(भाव) 4/2]	अन्य (पुद्गल से उत्पन्न) भावों के लिए
जीवो त्ति	[(जीवो)+(इति)]	
	जीवो (जीव) 1/1	जीव
	इति (अ) =	शब्दस्वरूपद्योतक
कदो	(कद) भूकृ 1/1 अनि	माना गया
सुत्ते	(सुत्त) 7/1	आगम में
तत्थेक्को	[(तत्थ)+(एक्को)]	
	तत्थ (अ) = वहाँ	वहाँ
	एक्को (एक्क) 1/1 वि	एक
णिच्छिदो	(णिच्छिद) भूकृ 1/1 अनि	निश्चित किया हुआ
जीवो	(जीव) 1/1	जीव

अन्वय-एमेव य अज्झवसाणादि अण्णभावाणं जीवो त्ति सुत्ते ववहारो कदो तत्थ णिच्छिदो जीवो एक्को।

अर्थ- इसी प्रकार अध्वसान वगैरह अन्य (पुद्गल से उत्पन्न) भावों के लिए (कहा गया) 'जीव' आगम में व्यवहार माना गया (है) अर्थात् व्यवहार नय से कहा गया है (किन्तु) वहाँ (रागादि भावों में) निश्चित किया हुआ जीव (तो) एक (ही) (है)।

---

1. यहाँ छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'आदी' के स्थान पर 'आदि' किया गया है।

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

49. अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।

अरसमरूवमगंधं	[(अरसं)+(अरूवं)+(अगंधं)]	
	अरसं (अरस) 2/1 वि	रसरहित
	अरूवं (अरूव) 2/1 वि	रूपरहित
	अगंधं (अगंध) 2/1 वि	गंधरहित
अव्वत्तं	(अव्वत्त) 2/1 वि	अप्रकट
चेदणागुणमसद्दं	[(चेदणागुणं)+(असद्दं)]	
	चेदणागुणं (चेदणागुण) 2/1 वि	चेतना गुणवाला
	असद्दं (असद्द) 2/1 वि	शब्दरहित
जाण	(जाण) विधि 2/1 सक	जानो
अलिंगग्गहणं	(अलिंगग्गहण) 2/1 वि	तर्क से ग्रहण न होनेवाला
जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं	[(जीवं)+(अणिद्दिट्ठसंठाणं)]	
	जीवं (जीव) 2/1	जीव को
	[(अणिद्दिट्ठ) भूकृ अनि-	न कहे हुए
	(संठाण) 2/1 वि]	आाकारवाला

अन्वय- जीवं अरसं अरूवं अगंधं अव्वत्तं चेदणागुणं असद्दं अलिंग-ग्गहणं अणिद्दिट्ठसंठाणं जाण।

अर्थ- (तुम) जीव को रसरहित, रूपरहित, गंधरहित, (स्पर्श से भी) अप्रकट, चेतना गुणवाला, शब्दरहित, तर्क से ग्रहण न होनेवाला (तथा) न कहे हुए आकारवाला जानो। (विभिन्न जीवों द्वारा विभिन्न शरीराकार ग्रहण किया हुआ होने के कारण कोई एक आकार नियत नहीं किया जा सकता है)।

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

50. जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो।
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं।।

जीवस्स	(जीव) 6/1	जीव के
णत्थि	अव्यय	नहीं है
वण्णो	(वण्ण) 1/1	वर्ण
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
गंधो	(गंध) 1/1	गंध
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
रसो	(रस) 1/1	रस
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
य	अव्यय	और
फासो	(फास) 1/1	स्पर्श
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
रूवं[1]	(रूव) 1/1	शब्द
ण	अव्यय	न
सरीरं	(सरीर) 1/1	शरीर
ण	अव्यय	न
वि	अव्यय	ही
संठाणं	(संठाण) 1/1	आकार
ण	अव्यय	नहीं
संहणणं	(संहणण) 1/1	अस्थि-रचना

अन्वय- जीवस्स वण्णो णत्थि ण वि गंधो ण वि रसो य ण वि फासो ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं संहणणं ण।

अर्थ- जीव के वर्ण नहीं (है), न ही गंध (है), न ही रस (है) और न ही स्पर्श (है), न ही शब्द (है) न (उसका) (कोई) शरीर (है), न ही (उसका) (कोई) आकार है (और) (उसके) (किसी प्रकार की) अस्थि-रचना (भी) नहीं (है)।

---

1. रूप→रूव = शब्द (आप्टे: संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश)

51. जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि।।

जीवस्स	(जीव) 6/1	जीव के
णत्थि	अव्यय	नहीं है
रागो	(राग) 1/1	राग
ण	अव्यय	नहीं
वि	अव्यय	भी
दोसो	(दोस) 1/1	द्वेष
णेव	अव्यय	न ही
विज्जदे	(विज्ज) व 3/1 अक	है
मोहो	(मोह) 1/1	मोह
णो	अव्यय	नहीं
पच्चया[1]	(पच्चय) 1/2	आस्रव व बंध का कारण
ण	अव्यय	न
कम्मं	(कम्म) 1/1	कर्म
णोकम्मं	(णोकम्म) 1/1	नोकर्म
चावि	अव्यय	और भी
से	(त) 6/1 सवि	उसके
णत्थि	अव्यय	नहीं है

अन्वय- जीवस्स रागो णत्थि दोसो वि ण णेव मोहो विज्जदे पच्चया णो ण कम्मं चावि से णोकम्मं णत्थि।

अर्थ- जीव के राग नहीं है, द्वेष भी नहीं (है), न ही (उसके) मोह है, आस्रव व बंध का कारण (भी) नहीं (है), न कर्म (है) और उसके नोकर्म (शरीरादि) भी नहीं है।

---

1. मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग- यह पाँच आस्रव व बंध के हेतु या प्रत्यय कहलाते हैं। (जैन दर्शन पारिभाषिक शब्दकोश)

52. जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्डया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि।।

जीवस्स	(जीव) 6/1	जीव के
णत्थि	अव्यय	नहीं है
वग्गो	(वग्गो) 1/1	वर्ग
ण	अव्यय	नहीं
वग्गणा	(वग्गणा) 1/1	वर्गणा
णेव	अव्यय	नहीं
फड्डया	(फड्डय) 1/2	स्पर्धक
	'य' स्वार्थिक	
केई	अव्यय	कोई
णो	अव्यय	न
अज्झप्पट्ठाणा	[(अज्झप्प)-(ट्ठाण) 1/2]	अध्यात्मस्थान
णेव	अव्यय	नहीं
य	अव्यय	और
अणुभागठाणाणि	[(अणुभाग)-(ट्ठाण) 1/2]	अनुभागस्थान

अन्वय- जीवस्स वग्गो णत्थि ण वग्गणा केई फड्डया णेव णो अज्झप्पट्ठाणा य अणुभागठाणाणि णेव।

अर्थ- जीव के वर्ग नहीं है, न वर्गणा है, कोई स्पर्धक (भी) नहीं (है), न अध्यात्मस्थान (है) और अनुभागस्थान (भी) नहीं (है)।

53. जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई॥

जीवस्स	(जीव) 6/1	जीव के
णत्थि	अव्यय	नहीं है
केई	अव्यय	कोई
जोयट्ठाणा	[(जोय)-(ट्ठाण) 1/2]	योगस्थान
ण	अव्यय	नहीं
बंधठाणा	[(बंध)-(ठाण) 1/2]	बंधस्थान
वा	अव्यय	भी
णेव	अव्यय	न ही
य	अव्यय	और
उदयट्ठाणा	[(उदय)-(ट्ठाण) 1/2]	उदयस्थान
ण	अव्यय	नहीं
मग्गणट्ठाणया	[(मग्गण)-(ट्ठाणय) 1/2] 'य' स्वार्थिक	मार्गणास्थान
केई	अव्यय	कोई

अन्वय- जीवस्स केई जोयट्ठाणा णत्थि बंधठाणा वा ण य णेव उदयट्ठाणा केई मग्गणट्ठाणया ण।

अर्थ- जीव के कोई योगस्थान नहीं है, बंधस्थान भी नहीं (है) और न ही उदयस्थान (है), कोई मार्गणास्थान (भी) नहीं (है)।

54. णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा।।

णो	अव्यय	नहीं
ठिदिबंधट्ठाणा	[(ठिदि)-(बंध)-(ट्ठाण) 1/2]	स्थितिबंधस्थान
जीवस्स	(जीव) 6/1	जीव के
ण	अव्यय	न
संकिलेसठाणा	[(संकिलेस)-(ठाण) 1/2]	संक्लेशस्थान
वा	अव्यय	भी
णेव	अव्यय	नहीं
विसोहिट्ठाणा	[(विसोहि)-(ट्ठाण) 1/2]	विशुद्धिस्थान
णो	अव्यय	नहीं
संजमलद्धिठाणा	[(संजम)-(लद्धि)-(ठाण) 1/2]	संयमलब्धिस्थान
वा	अव्यय	भी

अन्वय- जीवस्स ठिदिबंधट्ठाणा णो ण संकिलेसठाणा विसोहिट्ठाणा वा णेव संजमलद्धिठाणा वा णो।

अर्थ- जीव के स्थितिबंधस्थान नहीं (है), न संक्लेशस्थान (है), विशुद्धिस्थान भी नहीं (है) (तथा) संयमलब्धिस्थान भी नहीं (है)।

55. णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा।।

णेव	अव्यय	न ही
य	अव्यय	और
जीवट्ठाणा	(जीवट्ठाण) 1/2	जीवस्थान
ण	अव्यय	नहीं
गुणट्ठाणा	(गुणट्ठाण) 1/2	गुणस्थान
य	अव्यय	और
अत्थि	अव्यय	है
जीवस्स	(जीव) 6/1	जीव के
जेण	अव्यय	क्योंकि
दु	अव्यय	पादपूरक
एदे	(एद) 1/2 सवि	ये
सव्वे	(सव्व) 1/2 सवि	सभी
पोग्गलदव्वस्स	[(पोग्गल)-(दव्व) 6/1]	पुद्गलद्रव्य के
परिणामा	(परिणाम) 1/2	परिणमन

अन्वय- य णेव जीवट्ठाणा य जीवस्स गुणट्ठाणा ण अत्थि जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा।

अर्थ- और न ही जीवस्थान (है) और जीव के गुणस्थान (भी) नहीं है, क्योंकि ये सभी पुद्गलद्रव्य के परिणमन (है)।

56. ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स॥

ववहारेण	(ववहार) 3/1 तृतीयार्थक अव्यय	व्यवहारनय से
दु	अव्यय	तो
एदे	(एद) 1/2 सवि	ये
जीवस्स	(जीव) 6/1	जीव के
हवंति	(हव) व 3/2 अक	होते हैं
वण्णमादीया	[(वण्णं)+(आदीया)]	
	वण्णं (वण्ण) 1/1	वर्ण
	आदीया (आदिय) 5/1 'य' स्वार्थिक	वगैरह से
गुणठाणंता	[(गुणठाण)+(अंता)]	
	[(गुण)-(ठाण)- (अंत) 1/2 वि]	गुणस्थान की सीमा तक
भावा	(भाव) 1/2	भाव
ण	अव्यय	नहीं
दु	अव्यय	किन्तु
केई	अव्यय	कोई
णिच्छयणयस्स[1]	(णिच्छयणय) 6/1→3/1 तृतीयार्थक अव्यय	निश्चयनय से

अन्वय- एदे वण्णमादीया गुणठाणंता भावा ववहारेण दु जीवस्स हवंति दु णिच्छयणयस्स केई ण।

अर्थ- ये वर्ण वगैरह से गुणस्थान की सीमा तक भाव व्यवहारनय से तो जीव के होते हैं, किन्तु निश्चयनय से कोई (भी) (वर्णादि भाव) (जीव के) नहीं (होते हैं)।

---

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरणः 3-134)

57. एदेहिं य सम्बन्धो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा।।

एदेहिं[1]	(एद) 3/2 सवि	इनसे
य	अव्यय	पादपूरक
सम्बन्धो	(सम्बन्ध) 1/1	सम्बन्ध
जहेव	अव्यय	समानता व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त
खीरोदयं	[(खीर)+(उदयं)] [(खीर)-(उदय) 1/1]	दूध और जल
मुणेदव्वो	(मुण) विधिकृ 1/1	समझा जाना चाहिए
ण	अव्यय	नहीं
य	अव्यय	बिल्कुल
होंति	(हो) व 3/2 अक	होते हैं
तस्स	(त) 6/1 सवि	उसके
ताणि	(त) 1/2 सवि	वे
दु	अव्यय	तो
उवओगगुणाधिगो	[(उवओगगुण)+(अधिगो)] [(उवओग)-(गुण)-(अधिग) 1/1 वि]	ज्ञान-गुण से पूर्ण
जम्हा	अव्यय	क्योंकि

अन्वय- एदेहिं य सम्बन्धो खीरोदयं जहेव मुणेदव्वो ताणि तस्स य ण होंति जम्हा दु उवओगगुणाधिगो।

अर्थ- इनसे (वर्णादि से) (जीव का) सम्बन्ध दूध और जल के समान (अस्थिर) समझा जाना चाहिए। वे (वर्णादि) उसके (जीव के) बिल्कुल (ही) नहीं होते हैं, क्योंकि (जीव) तो ज्ञान-गुण से पूर्ण (ओत-प्रोत) (होता है)।

नोटः संपादक द्वारा अनूदित

58. पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई।।

पंथे	(पंथ) 7/1	मार्ग में
मुस्संतं	(मुस्संत) वकृ कर्म 2/1 अनि	लूटा जाता हुआ
पस्सिदूण	(पस्स) संकृ	देखकर
लोगा	(लोग) 1/2	लोग
भणंति	(भण) व 3/2 सक	कहते हैं
ववहारी	(ववहारि) 1/2 वि	सामान्य
मुस्सदि	(मुस्सदि) व कर्म 3/1 अनि	लूटा जाता है
एसो	(एत) 1/1 सवि	यह
पंथो	(पंथ) 1/1	मार्ग
ण	अव्यय	नहीं
य	अव्यय	किन्तु
पंथो	(पंथ) 1/1	मार्ग
मुस्सदे	(मुस्सदे) व कर्म 3/1 अनि	लूटा जाता है
कोई[1]	अव्यय	कोई

अन्वय- पंथे मुस्संतं पस्सिदूण ववहारी लोगा भणंति एसो पंथो मुस्सदि य कोई पंथो ण मुस्सदे।

अर्थ- मार्ग में (व्यक्ति को) लूटा जाता हुआ देखकर सामान्य लोग (यह) कहते हैं 'यह मार्ग लूटा जाता है, किन्तु (वास्तव में) कोई मार्ग लूटा नहीं जाता है (लूटा तो व्यक्ति जाता है)'।

---

1. यहाँ छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'कोइ' के स्थान पर 'कोई' किया गया है।

59. तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो।।

तह	अव्यय	उसी प्रकार
जीवे	(जीव) 7/1	जीव में
कम्माणं[1]	(कम्म) 6/2→3/2	कर्मों से
णोकम्माणं[1]	(कम्म) 6/2→3/2	नोकर्मों से
च	अव्यय	और
पस्सिदुं	(पस्स) संकृ	देखकर
वण्णं	(वण्ण) 2/1	बाह्य दिखाव-बनाव को
जीवस्स	(जीव) 6/1	जीव का
एस	(एत) 1/1 सवि	यह
वण्णो[2]	(वण्ण) 1/1	बाह्य दिखाव-बनाव
जिणेहि	(जिण) 3/2	जिनेन्द्रदेव के द्वारा
ववहारदो	(ववहार) 5/1 पंचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय	व्यवहार से
उत्तो	(उत्त) भूकृ 1/1 अनि	कहा गया

अन्वय-तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च वण्णं पस्सिदुं जिणेहि उत्तो एस वण्णो ववहारदो जीवस्स।

अर्थ- उसी प्रकार जीव में कर्मों से और नोकर्मों से (उत्पन्न) बाह्य दिखाव-बनाव को देखकर, जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा गया (है) (कि) यह बाह्य दिखाव-बनाव व्यवहार से जीव का (ही) (है)।

---

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरणः 3-134)
2. वण्ण = बाह्य दिखाव-बनाव (outward appearance), Monier Williams, Sanskrit-English Dictionary.

60. गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति।।

गंधरसफासरूवा	[(गंध)-(रस)-(फास)-(रूव) 1/2]	गंध, रस, स्पर्श और रूप
देहो	(देह) 1/1	देह
संठाणमाइया	[(संठाणं)+(आइया)]	
	संठाणं (संठाण) 1/1	आकार
	आइया (आइय) 1/2	आदि
	'य' स्वार्थिक	
जे	(ज) 1/2 सवि	जो
य	अव्यय	तथा
सव्वे	(सव्व) 1/2 सवि	सब
ववहारस्स[1]	(ववहार) 6/1→5/1	व्यवहार से
य	अव्यय	पादपूरक
णिच्छयदण्हू	(णिच्छयदण्हु) 1/2 वि	निश्चय के जानकार
ववदिसंति	(ववदिस) व 3/2 सक	कहते हैं

अन्वय- जे गंधरसफासरूवा देहो य संठाणमाइया सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति।

अर्थ- जो गंध, रस, स्पर्श और रूप (हैं) (जो) देह (है) तथा (जो) आकार आदि (हैं), (वे) सब व्यवहार से (जीव के) (जितेन्द्रियों द्वारा) (कथित हैं)। (ऐसा) निश्चय के जानकार कहते हैं।

---

1. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरणः 3-134)

61. तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी।
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई।।

तत्थ	(त) 7/1 सवि	उसमें
भवे	(भव) 7/1	अवस्था
जीवाणं	(जीव) 6/2	जीवों के
संसारत्थाण	(संसारत्थ) 6/2 वि	संसार में स्थित
होंति	(हो) व 3/2 अक	होते हैं
वण्णादी	[(वण्ण)+(आदी)]	
	[(वण्ण)-(आदि) 1/2]	वर्ण वगैरह
संसारपमुक्काणं	[(संसार)-(पमुक्क)[1] 6/2→7/2]	संसार से मुक्त में
णत्थि	अव्यय	नहीं है
हु	अव्यय	परन्तु
वण्णादओ	[(वण्ण)+(आदओ)]	
	[(वण्ण)-(आदि) 1/2]	वर्ण वगैरह
केई[2]	अव्यय	कोई

अन्वय-तत्थ भवे संसारत्थाण जीवाणं वण्णादी होंति हु संसारपमुक्काणं केई वण्णादओ णत्थि।

अर्थ- उस (व्यवहार) अवस्था में संसार में स्थित जीवों के वर्ण वगैरह होते हैं, परन्तु संसार से मुक्त (जीवों) में कोई वर्ण वगैरह नहीं है।

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरणः 3-134)
2. यहाँ छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'केइ' के स्थान पर ' केई' किया गया है।

62. जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई॥

जीवो	(जीव) 1/1	जीव
चेव	अव्यय	ही
हि	अव्यय	निस्सन्देह
एदे	(एद) 1/2 सवि	ये
सव्वे	(सव्व) 1/2 सवि	सब
भाव त्ति[1]	[(भावा)+(इति)]	
	भावा (भाव) 1/2	अवस्थाएँ
	इति (अ) =	इस प्रकार
मण्णसे	(मण्ण) व 2/1 सक	मानता है
जदि	अव्यय	यदि
हि	अव्यय	निश्चय ही
जीवस्साजीवस्स	[(जीवस्स)+(अजीवस्स)]	
	जीवस्स[2] (जीव) 6/1→7/1	जीव में
	अजीवस्स[2](अजीव)6/1→7/1	अजीव में
य	अव्यय	ही
णत्थि	अव्यय	नहीं है
विसेसो	(विसेस) 1/1	भेद
दु	अव्यय	तो
दे	अव्यय	पादपूरक
कोई[3]	अव्यय	कोई

अन्वय- जदि मण्णसे एदे सव्वे भाव त्ति चेव जीवो हि दु दे हि जीवस्साजीवस्स कोई विसेसो य णत्थि।

अर्थ- यदि (तू) इस प्रकार मानता है (कि) (जीव की) ये सब अवस्थाएँ निस्सन्देह जीव ही (हैं) तो (तेरे लिए) निश्चय ही जीव और अजीव में कोई भेद ही नहीं है/रहेगा।

---

1. प्राकृत-व्याकरणः पृष्ठ 7 (iii)
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरणः 3-134)
3. यहाँ छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'कोइ' के स्थान पर 'कोई' किया गया है।

63. अह संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा।।

अह	अव्यय	यदि
संसारत्थाणं	(संसारत्थ) 6/2 वि	संसार में स्थित
जीवाणं	(जीव) 6/2	जीवों के
तुज्झ[1]	(तुम्ह) 6/1→7/1 स	तुम्हारे मत में
होंति	(हो) व 3/2 अक	होते हैं
वण्णादी	[(वण्ण)+(आदि)]	
	[(वण्ण)-(आदि) 1/2]	वर्ण वगैरह
तम्हा	(त) 5/1 सवि	उस कारण से
संसारत्था	(संसारत्थ) 1/2 वि	संसार में स्थित
जीवा	(जीव) 1/2	जीव
रूवित्तमावण्णा	[(रूवित्तं)+(आवण्णा)]	
	रूवित्तं (रूवित्त) 2/1	रूपीपने को
	आवण्णा (आवण्ण)	प्राप्त हुए
	भूकृ 1/2 अनि	

अन्वय- अह तुज्झ संसारत्थाणं जीवाणं वण्णादी होंति तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा।

अर्थ- यदि तुम्हारे मत में संसार में स्थित जीवों के वर्ण वगैरह होते हैं (तो) उस कारण से संसार में स्थित जीव रूपीपने को प्राप्त हुए (हो जायेंगे)।

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरणः 3-134)

64. एवं पोग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पोग्गलो पत्तो।।

एवं	अव्यय	इस प्रकार
पोग्गलदव्वं	[(पोग्गल)-(दव्व) 1/1]	पुद्गलद्रव्य
जीवो	(जीव) 1/1	जीव
तहलक्खणेण	[(तह) अ-(लक्खण) 3/1]	उसी (रूपीपन के) लक्षण से
मूढमदी	(मूढमदि) 8/1	हे मूढबुद्धि!
णिव्वाणमुवगदो	[(णिव्वाणं)+(उवगदो)]	
	णिव्वाणं (णिव्वाण) 2/1	निर्वाण को
	उवगदो[1] (उवगद)	प्राप्त किया
	भूकृ 1/1 अनि	
वि	अव्यय	ही
य	अव्यय	और
जीवत्तं	(जीवत्त) 2/1	जीवत्व को
पोग्गलो	(पोग्गल) 1/1	पुद्गल
पत्तो[1]	(पत्त) भूकृ 1/1 अनि	प्राप्त हुआ

अन्वय- एवं मूढमदी तहलक्खणेण पोग्गलदव्वं जीवो य णिव्वाणमुवगदो पोग्गलो वि जीवत्तं पत्तो।

अर्थ- इस प्रकार हे मूढबुद्धि! (पूर्व कथित) उसी (रूपीपन के) लक्षण से पुद्गलद्रव्य जीव (हुआ) और (उसने) निर्वाण को प्राप्त किया। (अतः) (इसका अर्थ होगा) (कि) पुद्गल ही जीवत्व को प्राप्त हुआ (है)।

---

1. यहाँ भूतकालिक कृदन्त का प्रयोग 'कर्तृवाच्य' में किया गया है।

65. एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इन्दिया जीवा।
बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स।।

एक्कं	(एक्क) 1/1 वि	एक
च	अव्यय	और
दोण्णि	(दो) 1/2 वि	दो
तिण्णि	(ति) 1/2 वि	तीन
य	अव्यय	पुनरावृत्ति भाषा की पद्धति
चत्तारि	(चउ) 1/2 वि	चार
य	अव्यय	और
पंच	(पंच) 1/2 वि	पाँच
इन्दिया	(इन्दिय) 1/2	इन्द्रिय
जीवा	(जीव) 1/2	जीव
बादरपज्जत्तिदरा	[(बादरपज्जत्त)+(इदरा)]	
	[(बादर) वि-(पज्जत्त) वि-	बादर, पर्याप्त और
	(इदर) 1/2 वि]	इनसे इतर
पयडीओ	(पयडि) 1/2	प्रकृतियाँ
णामकम्मस्स	(णामकम्म) 6/1	नामकर्म की

अन्वय- एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इन्दिया बादरपज्जत्तिदरा जीवा णामकम्मस्स पयडीओ।

अर्थ- एक, दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रिय, बादर, पर्याप्त और इनसे इतर (सूक्ष्म और अपर्याप्त) जीव- (ये) नामकर्म की प्रकृतियाँ (हैं)।

66. एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणा उ करणभूदाहिं।
पयडीहिं पोग्गलमइहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो।।

एदाहि	(एदा) 3/2 सवि	इन
य	अव्यय	पादपूरक
णिव्वत्ता	(णिव्वत्त) भूकृ 1/2 अनि	रचे गये
जीवट्ठाणा	(जीवट्ठाण) 1/2	जीवों के भेद/प्रकार
उ	अव्यय	कि
करणभूदाहिं	[(करण)-(भूदा) भूकृ 3/2 अनि]	साधन बनी हुई
पयडीहिं	(पयडि) 3/2	प्रकृतियों द्वारा
पोग्गलमइहिं	[(पोग्गलमअ→ (पोग्गलमइ) 3/2]	पुद्गलमयी
ताहिं	(ता) 3/2 सवि	उनके कारण
कहं	अव्यय	कैसे
भण्णदे	(भण्णदे) व कर्म 3/1 अनि	कहा जा सकता है
जीवो	(जीव) 1/1	जीव

अन्वय- करणभूदाहिं एदाहि पोग्गलमइहिं पयडीहिं य जीवट्ठाणा णिव्वत्ता ताहिं कहं भण्णदे उ जीवो।

अर्थ- साधन बनी हुई इन पुद्गलमयी (नाम) प्रकृतियों द्वारा जीवों के भेद/प्रकार रचे गये (हैं)। (इसलिए) उनके कारण (यह) कैसे कहा जा सकता है कि (उनमें से प्रत्येक आत्मा अलग-अलग) जीव (है)?

67. पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता।।

पज्जत्तापज्जत्ता	[(पज्जत्त)+(अपज्जत्ता)]	
	*पज्जत्त[1] (पज्जत्त) 1/2 वि	पर्याप्त
	अपज्जत्ता[2](अपज्जत्त)1/2 वि	अपर्याप्त
जे	(ज) 1/2 सवि	जो
सुहमा	(सुहुम) 1/2 वि	सूक्ष्म
बादरा	(बादर) 1/2 वि	बादर
य	अव्यय	तथा
जे	(ज) 1/2 सवि	जो
चेव	अव्यय	निश्चय ही
देहस्स	(देह) 6/1	देह के
जीवसण्णा	[(जीव)-(सण्णा) 1/2]	जीवों के नाम
सुत्ते	(सुत्त) 7/1	आगम में
ववहारदो	(ववहार) 5/1	व्यवहारनय से
	पंचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय	
उत्ता	(उत्त) भूकृ 1/2 अनि	कहे गये

अन्वय- जे सुत्ते पज्जत्तापज्जत्ता य जे सुहमा बादरा ववहारदो जीवसण्णा उत्ता चेव देहस्स।

अर्थ- जो आगम में पर्याप्त-अपर्याप्त तथा जो सूक्ष्म-बादर व्यवहारनय से जीवों के नाम कहे गये (हैं) (वे) निश्चय ही देह के (नाम) (हैं)।

---

1. जो जीव पर्याप्त नामकर्म के उदय से अपने योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर लेते हैं वे पर्याप्त कहलाते हैं।
2. जो जीव अपर्याप्त नामकर्म के उदय से अपने योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं कर पाते वे अपर्याप्त कहलाते हैं।

* प्राकृत में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशलः प्राकृत भाषाओंका व्याकरण, पृष्ठ 517)

68. मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता।।

मोहणकम्मस्सुदया	[(मोहणकम्मस्स)+(उदया)]	
	मोहणकम्मस्स [(मोहण) वि-(कम्म) 6/1]	मोहनीय कर्म के
	उदया (उदय)[1] 5/1	उदय के कारण
दु	अव्यय	पादपूरक
वण्णिया	(वण्ण) भूकृ 1/2	वर्णित
जे	(ज) 1/2 सवि	जो
इमे	(इम) 1/2 सवि	ये
गुणट्ठाणा	(गुणट्ठाण) 1/2	गुणस्थान
ते	(त) 1/2 सवि	वे
कह	अव्यय	कैसे
हवंति[2]	(हव) व 3/2 अक	होंगे
जीवा	(जीव) 1/2	जीव
जे	(ज) 1/2 सवि	जो
णिच्चमचेदणा	[(णिच्चं)+(अचेदणा)]	
	णिच्चं (अ) = सदैव	सदैव
	अचेदणा (अचेदण) 1/2 वि	चेतनारहित
उत्ता	(उत्त) भूकृ 1/2 अनि	कहे गए

अन्वय- जे इमे गुणट्ठाणा दु मोहणकम्मस्सुदया वण्णिया जे णिच्चम-चेदणा उत्ता ते जीवा कह हवंति।

अर्थ- जो ये गुणस्थान (हैं) (वे) मोहनीयकर्म के उदय के कारण वर्णित (हैं)। जो सदैव चेतनारहित कहे गए (हैं), वे जीव कैसे होंगे?

---

1. कारण व्यक्त करनेवाले शब्दों में तृतीया या पंचमी होती है।
(प्राकृत-व्याकरण, पृष्ठ 42)
2. प्रश्नवाचक शब्दों के साथ वर्तमानकाल का प्रयोग प्रायः भविष्यत्काल के अर्थ में होता है।

मूल पाठ

1. वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।।

2. जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं।।

3. एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।।

4. सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।।

5. तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।

6. ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव।।

7. ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो।।

8. जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं।।

9. जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।।

10. जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।

11. ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।

12. सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।

13. भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।

14. जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि।।

15. जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं[1] पस्सदि जिणसासणं सव्वं।।

16. दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।।

17. जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण।।

18. एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण।।

19. कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव।।

20. अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा।।

21. आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि।
होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि।।

22. एयं तु असब्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो।।

23. अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो।।

24. सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं।।

25. जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं।
तो सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं।।

26. जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो।।

27. ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो।।

28. इणमण्णं जीवादो देहं पोग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं।।

29. तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो।
केवलिगुणो[1] थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि।।

30. णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति।।

31. जो इन्दिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू।।

32. जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया बेंति।।

33. जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं।।

34. सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं।।

35. जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुञ्चदे णाणी।।

36. णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति।।

37. णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति।।

38. अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि।।

39. अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूवेंति।।

40. अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं।
मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति।।

41. कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छंति।
तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो।।

42. जीवो कम्मं उहयं दोण्णि वि खलु केइ जीवमिच्छंति।
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति।।

43. एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।
ते ण परमट्ठवादी णिच्छयवादीहिं णिद्दिट्ठा।।

44. एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा।
केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चंति।।

45. अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पोग्गलमयं जिणा बेंति।
जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स।।

46. ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा।।

47. राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया।।

48. एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाणं।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो।।

49. अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।

50. जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो।
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं।।

51. जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि।।

52. जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्डया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि।।

53. जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई।।

54. णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा।।

55. णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा।।

56. ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स।।

57. एदेहिं य सम्बन्धो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा।।

58. पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई।।

59. तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो।।

60. गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति।।

61. तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी।
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई।।

62. जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई।।

63. अह संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा।।

64. एवं पोग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पोग्गलो पत्तो।।

65. एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इन्दिया जीवा।
बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स।।

66. एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणा उ करणभूदाहिं।
पयडीहिं पोग्गलमइहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो।।

67. पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता।।

68. मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता।।

परिशिष्ट-1

संज्ञा-कोश

संज्ञा शब्द	अर्थ	लिंग	गा.सं.
अजीव	अजीव	अकारान्त पु.	13, 62
अज्झप्प	अध्यात्म	अकारान्त नपुं.	52
अज्झवसाण	अध्यवसान	अकारान्त नपुं.	39, 40, 46, 48
अट्ठ	पदार्थ	अकारान्त पु., नपुं.	27
अणुभाग	फलदान शक्ति	अकारान्त पु.	41
	अनुभाग		52
अपदेस	उपदेश	अकारान्त पु.	15
अप्प	आत्मा	अकारान्त पु.	5, 10, 39
अप्पाण	आत्मा	अकारान्त पु.	9, 14, 15, 16, 39, 43
आइ	आदि	**इकारान्त** पु.	60
आद	मन	अकारान्त पु.	22
	आत्मा		26, 31, 32
आदि	वगैरह	**इकारान्त** पु.	46, 48,56, 61, 63
	इसी प्रकार और भी		37
आदेस	निरूपण	अकारान्त पु.	12
	कहना		47
आयरिय	आचार्य	अकारान्त पु.	26
आसव	आस्रव	अकारान्त पु.	13

इंदिय	इन्द्रिय	अकारान्त पु., नपुं.	31, 65
इसि	महर्षि	**इकारान्त** पु.	9
उदय	उदय	अकारान्त पु.	41, 53, 68
	जल	अकारान्त पु., नपुं.	57
उवएस	उपदेश	अकारान्त पु.	46
उवओग	उपयोग	अकारान्त पु.	24, 36, 37
	ज्ञान		57
उवदेसण	उपदेश देना	अकारान्त नपुं.	8
उवलंभ	प्राप्ति	अकारान्त पु.	4
एयत्त	एकत्व	अकारान्त नपुं.	3, 4, 5
कम्म	कर्म	अकारान्त पु., नपुं.	2, 19, 39, 41, 42, 45, 51, 59, 68
करण	साधन	अकारान्त नपुं.	66
कहा	कथा	आकारान्त स्त्री.	3, 4
काम	काम	अकारान्त पु.	4
	इच्छा		18
केवलि	केवली	**इकारान्त** पु.	29, 30
केवलिजिण	अरिहंत	अकारान्त पु.	44
खीर	दूध	अकारान्त नपुं.	57
गंध	गंध	अकारान्त पु.	50, 60
गदि	गति	**इकारान्त** स्त्री.	1
गुण	गुण	अकारान्त पु., नपुं.	29, 30, 57
	परिणाम		41

गुणट्ठाण	गुणस्थान	अकारान्त नपुं.	55, 56, 68
चरित्त	चारित्र	अकारान्त नपुं.	2, 7, 16
चेदणागुण	चेतना गुण	अकारान्त पु., नपुं.	49
छल	दोषपूर्ण दलील	अकारान्त नपुं.	5
जिण	अरहंत	अकारान्त पु.	10
	जिन	अकारान्त पु.	15, 45
	जिनेन्द्रदेव		59
जिणवर	जिनेन्द्रदेव	अकारान्त पु.	46
जीव	जीव	अकारान्त पु., नपुं.	2, 11, 13, 23, 24, 26, 27, 28, 39, 40, 41, 42, 44, 46, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 59, 61, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 68
	आत्मा		18
जीवट्ठाण	जीवों के भेद/ प्रकार	अकारान्त पु., नपुं.	66
जीवत्त	जीवत्व	अकारान्त नपुं.	25, 64
जोय	योग	अकारान्त पु.	53
ट्ठाणं	स्थान	अकारान्त पु., नपुं.	52, 53, 54, 55
ठाण	स्थान	अकारान्त पु., नपुं.	52, 53, 54, 56
ठिदि	स्थिति	**इकारान्त** स्त्री.	54
णअ	नय	अकारान्त पु.	11

णयर	नगर	अकारान्त नपुं.	30
णाण	ज्ञान	अकारान्त नपुं.	2, 7, 10, 16, 24, 31, 32, 34
णामकम्म	नामकर्म	अकारान्त नपुं.	65
णिच्छय	उद्देश्य	अकारान्त पु.	3
	निश्चयनय		16, 27
	निश्चयदृष्टि		29
णिच्छयणय	निश्यचयनय	अकारान्त पु.	56
णिज्जरा	निर्जरा	आकारान्त स्त्री.	13
णिम्ममत्त	निर्ममत्व	अकारान्त नपुं.	36, 37
णियम	नियम	अकारान्त पु.	34
णिव्वाण	निर्वाण	अकारान्त नपुं.	64
णोकम्म	नो कर्म	अकारान्त पु., नपुं.	19, 40, 51, 59
तच्च	यथार्थ	अकारान्त नपुं.	29
तित्थयर	तीर्थंकर	अकारान्त पु., नपुं.	26
तिव्वत्तण	तीव्रता	अकारान्त नपुं.	41
दंसण	दर्शन	अकारान्त पु., नपुं.	2, 7, 16, 38
दरीसण	कथन	अकारान्त पु., नपुं.	46
दव्व	द्रव्य	अकारान्त पु., नपुं.	20,23,25,44,55,64
	वस्तु		35, 24
दुक्ख	दुख	अकारान्त पु., नपुं.	45
देह	देह	अकारान्त पु., नपुं.	26,27,28,30,60,67
दोस	द्वेष	अकारान्त पु.	51

धम्म	धर्म	अकारान्त पु., नपुं.	37
पंथ	मार्ग	अकारान्त पु.	58
पच्चक्खाण	प्रत्याख्यान	अकारान्त नपुं.	34
पच्चय	आस्रव व बंध का कारण	अकारान्त पु.	51
पदेस	समूह	अकारान्त पु.	2
पमाण	प्रमाण	अकारान्त नपुं.	5
पयडि	प्रकृति	**इकारान्त** स्त्री.	65, 66
परमट्ठ	परमार्थ	अकारान्त पु.	32, 43
परमत्थ	परमार्थ	अकारान्त पु., नपुं.	8
परमाणु	परमाणु	***उकारान्त*** पु.	38
परिणाम	परिणमन	अकारान्त पु.	44, 55
पाव	पाप	अकारान्त पु., नपुं.	13
पुण्ण	पुण्य	अकारान्त पु., नपुं.	13
पुरिस	मनुष्य	अकारान्त पु., नपुं.	17, 35
पोग्गल	पुद्गल	अकारान्त पु., नपुं.	2, 23, 24, 25, 28, 44, 55, 64, 66
फड्ड	स्पर्धक	अकारान्त पु., नपुं.	52
फल	फल	अकारान्त पु., नपुं.	45
फास	स्पर्श	अकारान्त पु., नपुं.	50, 60
बंध	बंधन	अकारान्त पु.	3
	निरूपण		4
	बंध		13, 53, 54

बल	सेना	अकारान्त नपुं.	47
बुद्धि	बुद्धि	**इकारान्त** स्त्री.	19
भयव	भगवान	अकारान्त पु.	28
भव	अवस्था	अकारान्त पु.	61
भाव	भाव	अकारान्त पु.	6, 12, 23, 34, 35, 44, 46, 48, 56
	आत्मभाव		12
	अवस्था		62
भासा	भाषा	आकारान्त स्त्री.	8
भोग	भोग	अकारान्त पु., नपुं.	4
मंदत्तण	मंदता	अकारान्त नपुं.	41
मग्गण	मार्गणा	अकारान्त नपुं.	53
मदि	बुद्धि	**इकारान्त** स्त्री.	23
मुणि	मुनि	**इकारान्त** पु.	28
मेत्त	मात्र	अकारान्त नपुं.	38
मोक्ख	मोक्ष	अकारान्त पु.	13, 18
मोह	मोह	अकारान्त पु.	32, 33, 36, 51
रस	रस	अकारान्त पु., नपुं.	50, 60
राग	राग	अकारान्त पु.	51
राय	राजा	अकारान्त पु.	18, 30, 47
रूव	शब्द	अकारान्त पु., नपुं.	50
	रूप		60
रूवित्त	रूपत्व	अकारान्त नपुं.	63
लक्खण	लक्षण	अकारान्त पु., नपुं.	24, 64

लद्धि	लब्धि	**इकारान्त** स्त्री.	54
लोअ/लोय	लोक	अकारान्त पु.	3, 9
लोग	लोग	अकारान्त पु.	58
वग्ग	वर्ग	अकारान्त पु.	52
वग्गणा	वर्गणा	आकारान्त स्त्री.	52
वण्ण	वर्ण	अकारान्त पु.	50, 56, 63
	बाह्य दिखाव-बनाव		59
वण्णण	वर्णन	अकारान्त नपुं.	30
ववहार	व्यवहार	अकारान्त पु.	7, 8, 11, 12, 47, 48, 59, 60
	व्यवहारनय		46, 56, 67
ववहारणय	व्यवहारनय	अकारान्त पु.	27
वियप्प	विचार	अकारान्त पु.	22
विसेस	भेद	अकारान्त पु., नपुं.	62
विसोहि	विशुद्धि	**इकारान्त** स्त्री.	54
संकिलेस	संक्लेश	अकारान्त पु.	54
संजम	संयम	अकारान्त पु.	54
संजोग	संयोग	अकारान्त पु.	42
संठाण	आकार	अकारान्त नपुं.	49, 50, 60
संथुदि	स्तुति	**इकारान्त** स्त्री.	26
संवर	संवर	अकारान्त पु.	13
संसार	संसार	अकारान्त पु.	61
संहणण	अस्थि-रचना	अकारान्त नपुं.	50
सण्णा	नाम	आकारान्त स्त्री.	67

समय/समअ	समय	अकारान्त पु.	2
	आत्मा		3, 36, 37
समयपाहुड	समयपाहुड	अकारान्त नपुं.	1
समुदय	समूह	अकारान्त पु.	47
सम्बन्ध	सम्बन्ध	अकारान्त पु.	57
सम्मत्त	सम्यग्दर्शन	अकारान्त नपुं.	13
सरीर	शरीर	अकारान्त पु., नपुं.	26, 29, 50
स-विहव	निज वैभव/ स्वशक्ति	अकारान्त पु.	5
सव्वण्हु	सर्वज्ञ	अकारान्त पु.	24
स-समय	स्वसमय	अकारान्त पु.	2
सहाव	स्वभाव	अकारान्त पु.	31, 32
सासण	शासन	अकारान्त नपुं.	15
साहु	साधु	**उकारान्त** पु.	16, 31, 32, 33
सिद्ध	सिद्ध	अकारान्त पु.	1
सुत्त	साररूप	अकारान्त नपुं.	15
	आगम		48, 67
सुद	श्रुतज्ञान	अकारान्त नपुं.	9
	श्रुत		10
सुदकेवलि	श्रुतकेवली	**इकारान्त** पु.	1, 9, 10
सुद्धणय	शुद्धनय	अकारान्त पु.	14

अनियमित संज्ञा

रायाणं 2/1	राजा	17

क्रिया-कोश

अकर्मक

क्रिया	अर्थ	गा.सं.
अस	है	20, 21
चुक्क	चूकना	5
विज्ज	होना	51
हव	होना	11, 19, 33, 56, 68
	है	26, 27, 41
हो	होना	3, 6, 21, 29, 30, 57, 61, 63

क्रिया-कोश
सकर्मक

क्रिया	अर्थ	गा.सं.
अणुचर	सेवा करना	17
अहिगच्छ	अनुभव करना	9
इच्छ	स्वीकार करना	41, 42
कर	स्वीकार करना/मानना	22
	लाना	
चय	छोड़ना	35
जाण	जानना	2, 10, 16, 49
थुण	स्तुति करना	29
दाअ	देना	5
	प्रस्तुत करना	5
पच्चक्खा	त्यागना	34
परूव	प्रतिपादन करना	39
पस्स	देखना	14
	जानना	15
बुज्झ	समझना	36, 37
भण	कहना	6, 9, 23, 24, 31, 58
भास	कहना	27
मण्ण	मानना	28, 40, 62
मुण	अनुभव करना	31, 32
वद	कहना	43

ववदिस	कहना	60
विमुञ्च	त्यागना	35
वियाण	जानना	14
वोच्छ	कहना	1
सद्दह	विश्वास करना	17

अनियमित क्रिया

सकर्मक

आहु	कहा	10
बेंति	कहते हैं	32, 36, 37, 45

अनियमित कर्मवाच्य

उच्चदि 3/1	कहा जाता है	47
उवदिस्सदि 3/1	कहा जाता है	7
जुज्जदि 3/1	उपयुक्त माना जाता है	29
भण्णदि 3/1	कहा जाता है	33
भण्णदे 3/1	कहा जाता है	66
मुस्सदि 3/1	लूटा जाता है	58
मुस्सदे 3/1	लूटा जाता है	58
वुच्चदि 3/1	कहा जाता है	45
वुच्चंति 3/2	कहे जाते हैं	44

कृदन्त-कोश

संबंधक कृदन्त

कृदन्त शब्द	अर्थ	कृदन्त	गा.सं.
जाणिऊण	जानकर	संकृ	17
जाणिदुं	जानकर	संकृ	35
जिणित्ता	जीतकर	संकृ	31, 32
णाऊण	समझकर	संकृ	35
णादूणं	जानकर	संकृ	34
थुणित्तु	स्तुति करके	संकृ	28
पस्सिदूण	देखकर	संकृ	58
पस्सिदुं	देखकर	संकृ	59
वंदित्तु	वंदन करके	संकृ	1

हेत्वर्थक कृदन्त

गाहेदुं	पढ़ने/ समझने के लिए	हेकृ	8
वत्तुं	कहने के लिए	हेकृ अनि	25

भूतकालिक कृदन्त

अणिद्दिट्ठ	न कहा हुआ	भूकृ अनि	49
अणुभूद	अनभव किया हुआ	भूकृ अनि	4
अपुट्ठ	अस्पर्शित	भूकृ अनि	14, 15
अबद्ध	कर्मबंधन-रहित अबद्ध	भूकृ अनि	14, 15 23

अभिगद	जाना गया	भूकृ अनि	13
असंजुत्त	अन्य से असंयुक्त	भूकृ अनि	14
अस्सिद	आश्रित	भूकृ अनि	11
आगद	घटित हो जाय	भूकृ अनि	25
आवण्ण	प्राप्त हुआ	भूकृ अनि	63
उत्त	कहा गया	भूकृ अनि	59, 67, 68
उवगद	प्राप्त किया	भूकृ अनि	64
कद	किया हुआ	भूकृ अनि	30
	माना गया		48
गद	प्राप्त कर लिया गया	भूकृ अनि	3
जिद	जीता हुआ	भूकृ अनि	31, 32, 33
ट्ठिद	स्थित	भूकृ अनि	2
	दृढ़मना		12
णाद	जाना गया	भूकृ अनि	6
णिग्गद	निकला	भूकृ अनि	47
णिच्छिद	निर्धारण किया हुआ	भूकृ अनि	31
	निश्चित किया हुआ		48
णिद्दिट्ठ	कहा गया	भूकृ अनि	43
णिप्पण्ण	उत्पन्न	भूकृ अनि	44
णिव्वत्त	रचा गया	भूकृ अनि	66
थुद	स्तुति किया हुआ	भूकृ अनि	30

दिट्ठ	देखा गया	भूकृ अनि	24
देसिद	कहा गया	भूकृ	11
	उपदेश दिया गया		12
पत्त	प्राप्त हुआ	भूकृ अनि	1, 64
परिचिद	जाना हुआ	भूकृ अनि	4
बद्ध	वद्ध	भूकृ अनि	23
भणिद	प्रतिपादित	भूकृ	1
भणिय	कहा गया	भूकृ	44
भूद	हुआ	भूकृ अनि	24
	घटित	भूकृ अनि	25
	बना हुआ		66
मोहिद	मूर्च्छित	भूकृ	23
वंदिद	वंदना किया गया	भूकृ	28
वण्णिद	वर्णन किया गया	भूकृ	30
	प्रतिपादित		46
वण्णिय	वर्णित	भूकृ	68
विहत्त	भिन्न किया गया	भूकृ अनि	4, 5
संजुत्त	युक्त	भूकृ अनि	23
संथुद	स्तुति किया गया	भूकृ अनि	28
सुद	सुना हुआ	भूकृ अनि	4

विधि कृदन्त

अणुचरिदव्व	अनुभव किया जाना चाहिये	विधिकृ	18

असक्कं	संभव नहीं	विधिकृ अनि	8
घेत्तव्व	ग्रहण किया जाना चाहिये	विधिकृ अनि	5
णादव्व	समझा जाने योग्य	विधिकृ	12
	समझा जाना चाहिये		18
मुणेदव्व	समझा जाना चाहिये	विधिकृ	34, 57
सक्कं	समर्थ	विधिकृ अनि	8
सद्दहेदव्व	श्रद्धा किया जाना चाहिये	विधिकृ	18
सेविदव्वाणि	आराधन किया जाना चाहिये	विधिकृ	16

वर्तमान कृदन्त

अयाणंत	न जानता हुआ	वकृ	39
जाणंत	जानता हुआ	वकृ	22
थुव्वंत	स्तुति करता हुआ	वकृ कर्म अनि	30
मुस्संत	लूटा जाता हुआ	वकृ कर्म अनि	58
विपच्चमाण	उदय में आता हुआ	वकृ	45

विशेषण-कोश

शब्द	अर्थ	गा.सं.
अंत	सीमा	56
अगंध	गंधरहित	49
अचल	स्वरूप/स्वभाव में दृढ़	1
अचित्त	अचेतन	20
अचेदण	अचेतन	68
अट्ठविह	आठ प्रकार	45
अणज्ज	अनार्य	8
अणण्ण	अन्य से रहित	14, 15
अणोवम	अतुलनीय	20
अण्ण	अन्य	20, 48
	भिन्न	28
अत्थत्थी	धन का इच्छुक	17
अण्णाण	अज्ञान	23
अधिग	पूर्ण (ओत-प्रोत)	57
अधिय	परिपूर्ण	31, 32
अ-परम	अ-परम (शुभ-अशुभ)	12
अपज्जत्त	अपर्याप्त	67
अप्पडिबुद्ध	अज्ञानी	19
अप्पमत्त	अप्रमत्त	6

अभूदत्थ	अनात्मा में स्थित	11
अरस	रसरहित	49
अरूव	रूपरहित	49
अरूवि	अरूपी	38
अलिंगग्गहण	तर्क से ग्रहण न होनेवाला	49
अवर	अन्य	40, 41, 42
अविसेस	अंतरंग भेद-रहित	14, 15
अव्वत्त	अप्रकट	49
असद्द	शब्दरहित	49
असब्भूद	अविद्यमान	22
असंमूढ	ज्ञानी	22
इदर	इसके विपरीत	25
	इनसे इतर/अन्य	65
एक्क	केवलमात्र	36, 37
	अनुपम	38
एवंविह	ऐसे	43
केवल	एकमात्र	9
केवलि	केवली	28
खीण	क्षीण	33
जाणग	ज्ञायक	6, 7
णाणमइअ	ज्ञानमय	38
णाणि	ज्ञानी	7, 35

णिच्छयवादि	निश्चयवादी	43
णिच्छयविदु	आत्मस्थ ज्ञानी	33
णिच्छयदण्हु	निश्चय के जानकार	60
णियद	स्थायी	14
तिण्णि वि	तीनों	16
तिव्व	तीव्र	40
दरिसि	रुचि रखनेवाला	12
दुम्मेह	अज्ञानी	43
दोण्णि वि	दोनों	42
धुव	शाश्वत	1
पज्जत्त	पर्याप्त	65, 67
पमत्त	प्रमत्त	6
पमुक्क	मुक्त	61
पर	पर	2, 20, 34, 35, 39, 43
परम	शुद्ध	12
पोग्गलमय	पुद्गलमय	28, 45
प्पदीवयर	प्रकाशक	9
बद्ध	बद्ध	23
बहु	अनेक प्रकार	23
	बहुत	43
बहुविह	अनेक प्रकार के	43
बादर	बादर	65, 67
भूदत्थ	आत्मा में स्थित	11

	आत्मा में स्थित दृष्टि	11, 22
	आत्मा में लगी हुई दृष्टि	13
मंद	मंद	40
मज्झ	अन्तर्वर्ती	15
मिस्स	मिश्र	20
मूढ	अज्ञानी	39
मोहण	मोहनीय	68
ववहारि	सामान्य	58
वादि	बतानेवाला	39
	वादी	43
वियाणय	जाननेवाले	32
	अनुभव करनेवाले	36, 37
विसंवादिणि	विसंवादिनि	3
संमूढ	अज्ञानी	22
संसारत्थ	संसार में स्थित	61, 63
सक्क	समर्थ	25
सच्चित्त	चेतन	20
सम्मादिट्ठि	सम्यग्दृष्टि	11
सुद्ध	शुद्ध	6, 7, 9, 11, 12, 38
	शुद्धनय	12
सुन्दर	प्रशंसनीय	3
सुलह	सुलभ	4
सुहम	सूक्ष्म	67

संख्यावाची विशेषण

एक्क	एक	27, 47, 48, 65
चउ	चार	65
ति	तीन	65
दो	दो	65
पंच	पाँच	65

सर्वनाम-कोश

सर्वनाम शब्द	अर्थ	लिंग	गा.सं.
अण्ण	दूसरा	पु., नपुं.	38
अम्ह	मैं	पु., नपुं. स्त्री.	5, 19, 20, 21, 23, 24, 25, 28, 36, 37, 38
इम	यह	पु., नपुं.	1, 9, 23, 24, 25, 28, 68
उहय	दो	पु., नपुं. स्त्री.	42
एत	यह	पु., नपुं.	22, 47, 58, 59
एता	यह	स्त्री.	19
एद	यह	पु., नपुं.	20, 21, 44, 46, 55, 56, 57, 62
एदा	यह	स्त्री.	66
क	कौन	पु., नपुं.	17, 35, 36
ज	जो	पु., नपुं.	6, 9, 10, 12, 14, 15, 20, 29, 31, 32, 41, 45, 60, 67, 68
त	वह	पु., नपुं.	2, 5, 6, 9, 10, 14, 16, 17, 18, 22, 24, 25, 29, 31, 32, 33,36,37, 41, 43, 44, 45, 51,57, 61,63, 68
ता	वह	स्त्री.	66

तुम्ह	तुम	पु., नपुं. स्त्री.	63
सव्व	सब	पु., नपुं.	1, 4, 34, 60, 62
	समस्त		10, 45
	सम्पूर्ण		15
	सभी		35, 44, 46, 55
सव्वा	सब	स्त्री.	26

अव्यय-कोश

अव्यय	अर्थ	गा.सं.
अत्थि	है	38, 55
अपि	पादपूरक	45
अह	यदि	63
इति	शब्दस्वरूपद्योतक	34, 45, 47, 48
	इस प्रकार	35, 44, 62
	ऐसा	40
	पादपूरक	48
इदि	शब्दस्वरूपद्योतक	19
ई	पादपूरक	24, 25
उ	कि	66
एमेव	इसी प्रकार	48
एव	ही	36, 37
एवं	इस प्रकार	6, 64
	वैसे	18
कदा वि	कभी	27
कह	क्यों/कैसे	24, 44, 68
कहं	कैसे	66
किंचि वि	कुछ भी	38
केइ	कई	42
केई	कई	39
	कोई	52, 53, 56, 61

कोई	कोई	58, 62
खलु	ही	11, 27, 31, 42
	निस्सन्देह	19
	निश्चय ही	38
च	किन्तु	2
	और	13, 59, 65
	तथा	19
	पादपूरक	23, 39
चावि	ही	40
	और भी	51
चेव	ही	6, 16, 18, 26, 62, 67
जं	चूँकि	24
जइया	जब	33
जदि	यदि	5, 25, 26, 62
जम्हा	क्योंकि	10, 57
	चूँकि	34
जह	जैसे	8, 17, 30, 35
जहेव	समानता व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त	57
जा	जब तक	19
जे	कि	25
जेण	क्योंकि	55
ण	नहीं	4, 5, 8, 22, 26, 27, 29,

		30, 38, 43, 50, 51, 52, 53, 55, 56, 57, 58
	न	6, 7, 50, 51, 54
णत्थि	नहीं है	36, 37, 50, 51, 52, 53, 61, 62
णवरि	केवल	4
णाम	पादपूरक	17, 35
णिच्चं	सदैव	16, 68
	सदा	24
णेव	न ही	51, 52, 53, 55
	नहीं	52, 54
णो	न	52
	नहीं	51, 54
तइया	तब	33
तत्थ	वहाँ	47, 48
तम्हा	इसलिए	10, 34
तह	वैसे ही	8, 35
	उसी प्रकार	59
	उसी रूप	64
तह य	तथा	18
तहा	तथा	23, 40
	और	39
ताव	तब तक	19
तु	पादपूरक	9, 22, 32

तेण	इसलिए	3, 26
तो	तब	17
	तो	25
दु	और	6, 22
	चूँकि	6
	किन्तु	56
	पादपूरक	8, 33, 55, 68
	तथा	11
	ही	12, 42
	निस्सन्देह	18
	तो	26, 39, 56, 57, 62
	परन्तु	27
	कि	47
दे	पादपूरक	62
पयत्तेण	सावधानीपूर्वक	17
	तृतीयार्थक अव्यय	
पि	भी	21, 38
पुण	और	12, 16
पुणो	और	17
	फिर	18, 21
पुव्वं	पहले	21
मिच्छा	मिथ्या	26
य	और	13, 18, 19, 27, 50, 52, 53, 55, 64, 65

	पादपूरक	45, 47, 48, 57, 60, 66
	बिल्कुल	57
	किन्तु	58
	ही	62
	तथा	60, 67
	पुनरावृत्ति भाषा की पद्धति	65
वा	और	20
	भी	53, 54
वि	ही	4, 6, 7, 26, 50, 64
	कुछ भी	8
	भी	17, 30, 35, 36, 38, 50, 51
	इसलिए	38
विना	बिना	8
सदा	सदा	38
सव्वत्थ	सर्वत्र	3
हि	ही	2, 9, 18
	पादपूरक	21, 62
	क्योंकि	29
	निश्चय से	62
	निस्सन्देह	62
हु	ऐसा	28
	निश्चय ही	33
	ही	47
	परन्तु	61

परिशिष्ट-2

छंद[1]

छंद के दो भेद माने गए हैं-

1. मात्रिक छंद 2. वर्णिक छंद

1. मात्रिक छंद- मात्राओं की संख्या पर आधारित छंदो को 'मात्रिक छंद' कहते हैं। इनमें छंद के प्रत्येक चरण की मात्राएँ निर्धारित रहती हैं। किसी वर्ण के उच्चारण में लगनेवाले समय के आधार पर दो प्रकार की मात्राएँ मानी गई हैं- ह्रस्व और दीर्घ। ह्रस्व (लघु) वर्ण की एक मात्रा और दीर्घ (गुरु) वर्ण की दो मात्राएँ गिनी जाती हैं-

लघु (ल) (।) (ह्रस्व)

गुरु (ग) (ऽ) (दीर्घ)

(1) संयुक्त वर्णों से पूर्व का वर्ण यदि लघु है तो वह दीर्घ/गुरु माना जाता है। जैसे- 'मुच्छिय' में 'च्छि' से पूर्व का 'मु' वर्ण गुरु माना जायेगा।

(2) जो वर्ण दीर्घस्वर से संयुक्त होगा वह दीर्घ/गुरु माना जायेगा। जैसे- रामे। यहाँ शब्द में 'रा'और 'मे' दीर्घ वर्ण है।

(3) अनुस्वार-युक्त ह्रस्व वर्ण भी दीर्घ/गुरु माने जाते हैं। जैसे- 'वंदिऊण' में 'व' ह्रस्व वर्ण है किन्तु इस पर अनुस्वार होने से यह गुरु (ऽ) माना जायेगा।

(4) चरण के अन्तवाला ह्रस्व वर्ण भी यदि आवश्यक हो तो दीर्घ/गुरु मान लिया जाता है और यदि गुरु मानने की आवश्यकता न हो तो वह ह्रस्व या गुरु जैसा भी हो बना रहेगा।

---

1. देखें, अपभ्रंश अभ्यास सौरभ (छंद एवं अलंकार)

2. वर्णिक छंद- जिस प्रकार मात्रिक छंदों में मात्राओं की गिनती होती है उसी प्रकार वर्णिक छंदों में वर्णों की गणना की जाती है। वर्णों की गणना के लिए गणों का विधान महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक गण तीन मात्राओं का समूह होता है। गण आठ हैं जिन्हें नीचे मात्राओं सहित दर्शाया गया है-

यगण	-	।ऽऽ
मगण	-	ऽऽऽ
तगण	-	ऽऽ।
रगण	-	ऽ।ऽ
जगण	-	।ऽ।
भगण	-	ऽ।ऽ
नगण	-	।।।
सगण	-	।।ऽ

समयसार में मुख्यतया **गाहा छंद** का ही प्रयोग किया गया है। इसलिए यहाँ **गााहा छंद** के लक्षण और उदाहरण दिए जा रहे हैं।

लक्षण-

गाहा छंद के प्रथम और तृतीय पाद में 12 मात्राएँ, द्वितीय पाद में 18 तथा चतुर्थ पाद में 15 मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण-

ऽ ऽ। ऽ । ऽ ऽ । । ऽऽ। । ।ऽ । । । ऽ ऽ
जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो।
। । ऽऽ । ।ऽऽ । । ऽ ऽऽ । ऽ।।ऽ
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं।।

।।।। ऽ । ।ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ।। । ऽ ऽ
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
ऽ । । ऽ ऽ । । ऽ ऽ । । ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।

ऽ ऽ। ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ
जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
ऽ। । ।। ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई।।

। । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ ऽ
तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
ऽ ऽ । ऽ। ऽ ऽ । ऽ। । । ऽ । ऽ ऽ ऽ
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो।।

सहायक पुस्तकें एवं कोश

1.	समयसार	: हिन्दी टीकाकार - आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज सम्पादक-डॉ.दरबारीलाल कोठिया, बीना (म.प्र.) (श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, अजमेर (राज.), तृतीय संस्करण, 1994)
2.	समयसार	: समय-प्रमुखः आचार्य विद्यानन्द मुनिराज सम्पादक-पं.बलभद्र जैन (जैनविद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी (राजस्थान) तृतीय संस्करण, 1997)
3.	समय पाहुड	: अनुवादक-श्री रूपचन्द कटारिया (वीर सेवा मन्दिर, नई दिल्ली, 2000)
4.	समयसार	: हिन्दी टीका- डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल (श्री कल्याणमल राजमल पाटनी सिद्ध चेतना ट्रस्ट, कोलकाता एवं पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर, पंचम संस्करण, 2012)
5.	पाइय-सद्द-महण्णवो	: पं. हरगोविन्ददास त्रिविक्रमचन्द्र सेठ (प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, 1986)

6.	कुन्दकुन्द शब्दकोश	: डॉ. उदयचन्द्र जैन (श्री दिगम्बर जैन साहित्य-संस्कृति संरक्षण समिति, दिल्ली, 1989)
7.	प्राकृत-हिन्दी शब्दकोश	: डॉ. उदयचन्द्र जैन (न्यु भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, 2005)
8.	संस्कृत-हिन्दी कोश	: वामन शिवराम आप्टे (कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996)
9.	जैन दर्शन पारिभाषिक शब्दकोश	: मुनि श्री क्षमासागर जी (मैत्री समूह, 2600, नागोरियों का चौक, घी वालों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर द्वितीय संस्करण, 2014)
10.	हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण, भाग 1-2	: व्याख्याता श्री प्यारचन्द जी महाराज (श्री जैन दिवाकर-दिव्य ज्योति कार्यालय, मेवाड़ी बाजार, ब्यावर, 2006)
11.	प्राकृत भाषाओं का व्याकरण	: लेखक -डॉ. आर. पिशल हिन्दी अनुवादक - डॉ. हेमचन्द्र जोशी (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1958)
12.	प्राकृत रचना सौरभ	: डॉ. कमलचन्द सोगाणी (अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर, तृतीय संस्करण, 2003)
13.	प्राकृत अभ्यास सौरभ	: डॉ. कमलचन्द सोगाणी (अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण, 2004)

14.	प्रौढ प्राकृत रचना सौरभ, भाग-1	: डॉ. कमलचन्द सोगाणी (अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर, 1999)
15.	प्राकृत-व्याकरण (संधि- समास- कारक-तद्धित- स्त्रीप्रत्यय-अव्यय)	: डॉ. कमलचन्द सोगाणी (अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर, 2008)
16.	अपभ्रंश अभ्यास सौरभ (छंद एवं अलंकार)	: डॉ. कमलचन्द सोगाणी (अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर,2008)
17.	प्राकृत- हिन्दी-व्याकरण (भाग-1, 2)	: लेखिका- श्रीमती शकुन्तला जैन संपादक- डॉ. कमलचन्द सोगाणी (अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर, 2012, 2013)